MAHIN 1.6

एम.ए.हिन्दी

राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० के अनुसार

संशोधित पाठ्यक्रम

सत्र - १

शोध प्रविधि एवं प्रक्रिया

(RESEARCH METHODOLOGY)

© UNIVERSITY OF MUMBAI

प्राध्यापक रविंद्र द. कुलकर्णी
कुलगुरू,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

डॉ. अजय भामरे
प्र-कुलगुरु,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

प्राध्यापक शिवाजी सरगर
संचालक,
दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

कार्यक्रम समन्वयक : **प्रा. अनिल आर. बनकर**
सहयोगी प्राध्यापक, इतिहास विभाग व
प्रमुख, मानव्यविद्याशाखा,
दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

अभ्यासक्रम समन्वयक एवं संपादक : **डॉ. संध्या शिवराम गर्जे**
सहायक प्राध्यापक,
दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

लेखक : **डॉ. दत्ता मुरुमकर**
प्राध्यापक हिन्दी विभाग,
मुंबई विश्व विद्यालय, मुंबई

: **डॉ. सचिन गपाट**
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
मुंबई विश्व विद्यालय, मुंबई

: **डॉ. प्रकाश धुमाल**
सहयोगी प्राध्यापक,
जनसेवा शिक्षण मंडळ, शांतारामभाऊ घोलप कला, विज्ञान और वाणिज्य महाविद्यालय, शिवले, ता. मुरबाड,
जि. ठाणे

नोव्हेंबर २०२४, मुद्रण - १

प्रकाशक : संचालक, दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र, मुंबई विद्यापीठ,
विद्यानगरी, मुंबई -४०० ०९८.

अक्षर जुळणी व मुद्रण : मुंबई विद्यापीठ मुद्रणालय,
विद्यानगरी, सांताक्रुझ (पूर्व), मुंबई - ४०००९८

अनुक्रमणिका

क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
१.	अनुसंधान का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरुप	०१
२.	अनुसंधान के मूल तत्व	११
३.	अनुसंधान के प्रकार	२३
४.	अनुसंधान और आलोचना	३८
५.	अनुसंधान प्रविधि	५२
६.	अनुसंधान प्रक्रिया	६२
७.	पाठानुसंधान	७२
७.	शोध प्रबंध की रुपरेखा	७९

NAME OF PROGRAM	**M.A. (C.B.C.S.)**
NAME OF THE COURSE	**M.A. (Hindi)**
SEMESTER	**I**
PAPER NAME	**Research Methodology (शोध प्रविधी एवं प्रक्रिया)**
PAPER NO.	**15**
COURSE CODE	**33506**
LACTURE	**60**
INTERNAL ASSESSMENT	**50**
EXTERNAL ASSESMENT	**50**
CREDITS & MARKS	**4 & 100**

Course Outcomes :

क) अनुसंधान का महत्त्व और उसकी उपयोगिता का ज्ञान

ख) अनुसंधान प्रक्रिया की समझ विकसित करना

ग) अनुसंधान प्रवृत्ति का विकास

घ) अनुसंधान के विविध पक्षों की जानकारी

MODULE I : (2 CREDITS)

Unit 1 :

क) अनुसंधान का स्वरूप और महत्त्व

ख) अनुसंधान के मूल तत्त्व

ग) अनुसंधान - वैज्ञानिक, समाज एवं मानविकी अनुसंधान

MODULE I :

Unit 2 :

क) अनुसंधान के प्रकार (वर्णनात्मक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक, लोकतात्विक, भाषा केंद्रित, अनुशासिक, गुणात्मक एवं परिमाणात्मक)

ख) अनुसंधान और आलोचना - परस्पर संबंध तथा भेद

ग) अनुसंधाता के गुण / अहर्ताएँ

MODULE II : (2 CREDITS)

Unit 3 :

क) अनुसंधान प्रविधी - ऐतिहासिक, साहित्य शास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय तथा भाषा शास्त्रीय प्रविधियाँ

ख) अनुसंधान की प्रक्रिया : विषय चयन, अनुसंधान की समस्या, पूर्ववर्ती संबंधित शोधकार्य की पुनर्निरीक्षण, अनुसंधान की रूपरेखा, स्त्रोत एवं सामग्री, कंप्यूटर का भाषिक अनुप्रयोग, प्रश्नावली निर्माण, साक्षात्कार, सामग्री का विवेचन - विश्लेषण

ग) पाठानुसंधान : पाठ संपादन, पाठ आधार, पाठ निर्णय, हस्तलेख, मूल लिपि

Unit 4 :

क) शोध प्रबंध की रुपेखा, शीर्ष पृष्ठ

ख) प्रस्तावना, अध्याय - विभाजन, (शीर्षक, उपशीर्षक)

ग) पाद टिप्पणी, परिशिष्ट, संदर्भ सूची (आधार ग्रंथ, सहायक ग्रंथ, पत्र-पत्रिकाएँ, शब्दकोश, वेबसाइट)

References :

१) शोध प्रविधी - डॉ. विजय मोहन शर्मा
२) अनुसंधान प्रक्रिया - सं. डॉ. सावित्री सिंह तथा विजयेन्द्र स्त्रातक
३) अनुसंधान का विवेचन - डॉ. उदयभानु सिंह
४) अनुसंधान - डॉ. सत्येंद्र
५) साहित्य, सिद्धांत और शोध - डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित
६) नवीन शोधविज्ञान - डॉ. तिलक
७) साहित्यिक शोध के सिद्धांत एवं समस्याएँ - डॉ. उपाध्याय
८) अनुसंधान का स्वरूप - सं. डॉ. सावित्री सिन्हा
९) शोध - प्रविधी और प्रक्रिया - रावत तथा खंडेलवाल
१०) अनुसंधान के मूल तत्व - सं. विश्वनाथ प्रसाद
११) पाठानुसंधान - डॉ. विमलेक्षा कांति
१२) पाठानुसंधान - डॉ. कन्हैया सिंह

✞✞✞✞

१

अनुसंधान का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

इकाई की रूपरेखा :

१.१ उद्देश्य

१.२ प्रस्तावना

१.३ अनुसंधान का स्वरूप और महत्व

१.३.१ अनुसंधान के पर्याय शब्द

१.३.२ अनुसंधान शब्द की उत्पत्ति और अर्थ

१.३.३ अनुसंधान की परिभाषा

१.३.४ विषय निष्कर्ष

१.४ सारांश

१.५ लघुत्तरी प्रश्न

१.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१.७ संदर्भ ग्रन्थ

१.१ उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको निम्नलिखित विषयों की जानकारी प्राप्त होगी।

१. अनुसंधान का अर्थ, परिभाषा तथा स्वरूप को समझ सकते हैं।

२. अनुसंधान के प्रयोजनों को समझ पाएंगे।

३. साहित्य तथा साहित्य अनुसंधान को जान पाएंगे।

१.२ प्रस्तावना

मनुष्य की जिज्ञासा ने आज तक अनेक प्रकार की ज्ञान शाखाओं का विकास एवं विस्तार केवल अनुसंधान से प्राप्त किया है। वैज्ञानिक अनुसंधान जो प्रयोग अनुसंधान भी कहलाता है उसने मानवीय समाज के भौतिक जीवन में बहुत बड़ा बदलाव या परिवर्तन लाया है। जो मानविकी के अनुसंधान ने भाषा, साहित्य के साथ मनुष्य की अभिजात सौंदर्यमूलक एवं आनंदमूलक अभिप्रेरणाओं के साथ सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, शिक्षा, मनोविज्ञान, नैतिक मूल्य, सौंदर्य शास्त्र, भाषाशास्त्र, इतिहास, भूगोल के ज्ञान संग का अपरिमित विस्तार किया है। यह यात्रा मनुष्य ने प्राकृतिक रहस्यों को जानने से आरंभ हुई थी। उसके बाद उसने कृषि युग से औद्योगिक क्रांति या औद्योगिक युग, तकनीकी तथा

सूचना युग का विकास किया और मानवीय जनजीवन को सुलभ एवं सुविधा पूर्ण बनाया है। व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के चिंतन एवं संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उत्तरोत्तर वह नए ज्ञान की खोज में संलग्न हुआ है।

१.३ अनुसंधान का स्वरूप और महत्व

अनुसंधान की मूल प्रेरणा जिज्ञासा है। जो मानवीय स्वाभाविक अभिप्रेरणा है। अनादि काल से मनुष्य सृष्टि में घटने वाली घटनाओं, रहस्यों को जानने के क्रम में ही जिज्ञासू रहा है। इन्हीं जिज्ञासा के परिणाम स्वरुप सभ्यता एवं संस्कृति का विकास संभव हुआ है। साहित्यिक अनुसंधान में वैज्ञानिक दृष्टि एवं प्रकल्पनाओं का सहयोग लेकर उसके मूल को जानने का भाव प्रधानतया रहा है। वस्तुत: अनुसंधान अल्प ज्ञात विषय की ओर से अज्ञात विषय की यात्रा है। अज्ञात की ओर जाना अनुसंधान का उद्देश्य है। अल्प ज्ञात से अज्ञात और अज्ञात से ज्ञात की संकल्पनात्मक पूर्ति अनुसंधान से ही संभव है। लेकिन अनुसंधान में ज्ञान सदैव परिपूर्ण होता नहीं है। यह सारी प्रक्रिया अथवा खोज वैज्ञानिक पद्धति से ही की जाती है।

अनुसंधान वह कार्य है जिसे बहुत ही कठोर परिश्रम पूर्वक किया जाता है। जिसमें विवेकपूर्ण लगन से निर्णय तक पहुंचा जाता है। यह प्रक्रिया शास्त्रीय पद्धति से की जाती है। मनुष्य ने आज तक भौतिक एवं भौतिकेत्तर अनुसंधान में अमानवीय कल्पनाओं के द्वारा नहीं, मानवीय जिज्ञासा के द्वारा नवनिर्माण का कार्य जीवन के विविध क्षेत्रों में किया है। किसी भी मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण में अनुसंधान महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

मनुष्य मूलत: जिजिविषयक प्राणी है। अनुसंधान का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य निरंतर हो रहा है। सुलभ मानवीय जिज्ञासावृत्ति के कारण अनुसंधान का कार्य गतिमान रूप में हो रहा है। अनुसंधान एक वैज्ञानिक रूप प्रणाली अथवा पद्धति है।

१.३.१ अनुसंधान के पर्याय शब्द :-

इसमें शोध, अन्वेषण, गवेषणा, खोज, मीमांसा, अनुशीलन, सर्वेक्षण, आलोचना आदि शब्द अनुसंधान के समान अर्थ प्रकट करने वाले हैं। किंतु आज अनुसंधान यह शब्द विशिष्टार्थ में प्रयुक्त किया जाता है। वह निम्न प्रकार से है-

१. शोध :-

'शोध' यह शब्द अनुसंधान का समानार्थ रखता है। 'अनुसंधान' और 'शोध' यह दोनों शब्द अधिक मात्रा में प्रचलित शब्द हैं। अनुसंधान शोध की जगह 'शोध' शब्द अधिक मात्रा में प्रचलित है। अनुसंधान की अपेक्षा शोध शब्द की कुछ सीमा है। शोध शब्द 'शुद्ध' धातु या 'शोधन' से बना है। इसका अर्थ है किसी बहुमूल्य पदार्थ से शोधना या छांटना है। अंग्रेज़ी में शोध के लिए 'रिसर्च' शब्द का प्रयोग किया जाता है। ज्ञान के क्षेत्र में शुद्ध पद्धति के लिए शोध का प्रयोग किया जाता है। शोध शब्द में अनुसंधान का भाव तो है परंतु उसमें पुनः पुनः का शब्द नहीं है।

२. अन्वेषण :-

इसका अर्थ है पीछे पड़कर खोजना या खोई हुई वस्तु को तलाशना है। 'अन्वेष' का अर्थ ढूँढ़ना, खोजना है। इसके लिए अंग्रेज़ी में 'डिस्कवरी' शब्द का प्रयोग होता है जो भौगोलिक खोजों के लिए प्रयुक्त होता है। इसी बात की ओर इंगित करते हुए बैजनाथ सिंहल ने कहा है कि -"साहित्यिक क्षेत्र में जिस तात्विक खोज की बात निहित रहती है, वह अन्वेषण शब्द में समाहित नहीं हो पाती।" (शोध: स्वरूप एवं मानक व्यवहारिक कार्यविधि ले. बैजनाथ सिंहल, वाणी प्रकाशन,सं. 2015, पृ.-12)

३. गवेषणा :-

वैदिक काल में इसका बहुत ही साधारण अर्थ रहा है। 'गायों को खोजना'। कालांतरण में भाषायी अर्थ परिवर्तन तथा विस्तार प्रवृत्ति के कारण इसका अर्थ 'खोजना' शब्द के रूप में होने लगा। धीरे-धीरे यह शब्द अपना अर्थ खो बैठा और इसका प्रयोग सर्वत्र प्रचलित हुआ।

४. खोज :-

मूलतः प्राकृत के 'खोज्ज' शब्द से इसकी निर्मित हुई। जिसका अर्थ है 'पदचिन्ह'। 'खोज' यह शब्द अत्यंत साधारण शब्द है। इस शब्द का प्रयोग किसी भी क्षेत्र में किया जाता है। "अर्थ विस्तार की दृष्टि से इस शब्द का प्रयोग चिन्ह, निशान, तलाश, गवेषणा, अनुसंधान के अर्थ रूप में प्रयुक्त होता रहा है।"

५. मीमांसा :-

यह शब्द मूलतः दर्शनशास्त्र का शब्द है। इसमें चिंतन प्रधान बौद्धिक पक्ष पर अधिक बल दिया जाता है। ऐसा माना जाता है कि मीमांसा में तथ्यानुसंधान का आभाव होता है। साहित्यिक शोध में यह एक प्रकार की शुष्कता लाता है क्योंकि इसमें भावों को कोई महत्व नहीं दिया जाता है।

६. अनुशीलन :-

इसका प्रयोग 'अनुसरण' के अर्थ में भी होता है। यह शब्द अनुसंधान के निकट का है किंतु इसमें अनुसंधान जैसी गंभीरता नहीं है। अनुशीलन में किसी विषय या किसी पहलू पर व्यक्तिगत रूप से विचार किया जाता है। इसमें सैद्धांतिक नियमों का आधार प्राय: सामान्य रूप से लिया जाता है। इसमें अनुशीलन शब्द की अपनी सीमाएं होती हैं।

७. सर्वेक्षण :-

'सर्वेक्षण' यह शब्द मुख्यतः भूगोल जैसे विषय से संबंधित है। सर्वेक्षण के अंतर्गत भूमि नापना या विविध प्रकार की सामग्री को घूम फिर कर इकट्ठा करना होता है। इसी प्रवृत्ति एवं गुणों के अनुसार इसका सशक्त प्रयोग भाषा विज्ञान के क्षेत्र में 'भाषा सर्वेक्षण' के कार्य के लिए जॉर्ज ग्रियर्सन ने किया है। भाषा सर्वेक्षण का यह असाधारण कार्य है।'सर्वेक्षण' शब्द किसी विषय के बाह्य रूप के अध्ययन क्षेत्र से प्रचलित है। अतः यह कहा जा सकता है कि सर्वेक्षण शब्द की यह मर्यादा है। इसी प्रकार के भाषाई सर्वेक्षण का असाधारण कार्य हाल ही में डॉ. गणेश देवी जी ने भी किया है।

८. आलोचना :-

विषय को सैद्धांतिक रूप में विवेचित करने का भाव इस शब्द में है । किंतु आलोचना की प्रकृति संस्कार करने की होती है । सर्वांगीण विवेचन की नहीं होती है । 'आलोचना' एवं 'अनुसंधान' इन दोनों में भिन्नता है । अनुसंधान ज्ञान प्रधान है तो आलोचना रागात्मक होती है । अनुसंधान की रागात्मकता और तटस्थता आलोचना में गौण मात्रा में होती है । अनुसंधान में ज्ञानात्मकता और तटस्थता, निष्पक्षता, तथ्यात्मकता को प्रधान माना जाता है । आलोचना में विषय की समग्रता को देखा, परखा जाता है । आलोचना की दृष्टि प्रायः वैयक्तिक और रागात्मक होती है । बढ़ा चढ़ाकर किसी बात, विचार, भाव का वर्णन करने की प्रशंसात्मक वृत्ति आलोचना में होती है ।

१०. अनुसंधान :-

'अनु' उपसर्ग लगाकर 'संधान' शब्द बना है । उदयभानु सिंह के अनुसार 'धा' धातु का अर्थ है- "रखना, दृष्टि आदि को किसी वस्तु पर स्थित करना, किसी ओर लगाना, धारण करना। संधान का अर्थ है- संयोजन, लक्ष्य बांधना, निशाना लगाना। अनुसंधान के अर्थ हैं- पीछे लगना, सोचना विचारणा, लक्ष्य बनाना, चिंतन या धारावाहिक चिंतन, अन्वेषण, निरीक्षण, परीक्षण, निर्धारण प्रमाणोल्लेखन, योजना बनाना, प्रबंध या व्यवस्था करना, उपनय आदि । आधुनिक 'रिसर्च' की अधिकांश विशेषताएं विषय विशेष को निश्चित लक्ष्य बनाकर उसका अविच्छिन्न चिंतन, तदुपयोगी सामग्री का मनोयोगपूर्वक अन्वेषण, उसका निरीक्षण, परीक्षण, तथ्यों के संबंध का आख्यान, प्रमाणों का उल्लेख, प्रतिपाद्य विषय का योजनानुसार व्यवस्थित प्रतिपादन, परंपरा या व्यवहृत अनुसंधान शब्द में न्यूनाधिक रूप से पाई जाती हैं । अतः अनुसंधान शब्द अंग्रेजी के 'रिसर्च' का निकटतम पर्याय है ।"(अनुसंधान स्वरूप एवं आयाम पृष्ठ 11 -12)

इस प्रकार अनुसंधान के पर्यायवाची शब्द प्रचलित हैं । हिंदी और देवनागरी के समान अंग्रेजी के शब्द भी प्रचलित हैं। जैसे:-

Examination -परीक्षा

Investigation -खोज

Survey -सर्वेक्षण

Review –समालोचना

परंतु इनकी अपनी सीमाएं हैं। यह अनुसंधान जैसा व्यापक अर्थ नहीं रखती।'research'यह प्रभावी शब्द है। जो सर्वाधिक प्रयुक्त वैज्ञानिक एवं प्रर्यायी शब्द है।'Research'शब्द में 'अनुसंधान' के भाव एवं अर्थ को पूर्णता वहन करने की क्षमता है।

Examination-अनुसंधान में हर एक विचार की परीक्षा तटस्थता और गंभीरता से होती है।

Investigation-यह भी उतना सर्वांग परिपूर्ण शब्द नहीं है।

Review-रचना, घटना, प्रसंग विशेष की समालोचना करना है।

Research:-

R-Rational ways of thinking - शास्त्रीय सम्यक और संयुक्त विचार

E-Expert Exhaustive Treatment - विद्वता प्रचूर, गहन गंभीर विषयों की मीमांसा

S-Search for knowledge - ज्ञान की खोज

E-Exactness - हु - ब - हु, ज्यों की त्यों, यथावह

A-Analysis of Quoted data - सामग्री का गहन विश्लेषण

R-Relationship for facts - तथ्य एवं घटनाओं से वास्तविक संबंध

C-(१) Critical thinking समीक्षक विचार

(२)Constrcetive attitude - संरचनात्मक प्रवृत्ति

(३) Careful response - चिंतनात्मक प्रतिवेदन

H-honesty and hard work - प्रमाणिकता तथा कठिन परिश्रम

अनुसंधान लक्ष्योन्मुखी है। जब तक आदमी लक्ष्य तक नहीं पहुंचता तब तक न रुकने वाली एक प्रक्रिया है। इसमें ज्ञान प्रधान एवं तटस्थ दृष्टि होनी चाहिए।

१.३.२ अनुसंधान शब्द की उत्पत्ति और अर्थ -

अनुसंधान शब्द 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'धा' धातु से बना है। अनु: पीछे लगाना, अनुकरण करना या पुन: पुन: करना। 'संधान'का अर्थ है - निशाना लगाना, लक्ष्य बांधना, निश्चित करना। अनुसंधान- पूर्ण एकाग्रता एवं धैर्य पूर्वक एकाग्रता से उद्देश्य की ओर पहुँचना। अनुसंधान विशिष्ट रुचि, धैर्य, त्याग, विद्वता ,तपस्या की लंबी खोज है। अनुसंधान में अनुसंधाता को अपना सर्वस्व समर्पित करना पड़ता है।

जैसे कबीर ने कहा है-

जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ,

ज्यो बिहरा, बूडन डरा, रहा किनारे बैठा।"

जो प्रयत्न करते हैं वह गोताखोर की तरह कुछ न कुछ प्राप्त करते हैं। अनुसंधान शब्द की भव्य विराटता, गंभीरता समझने के लिए एकलव्य का उदाहरण दिया जा सकता है।

अनुसंधान का ध्यान पूर्णतया लक्ष्योंन्मुख होना चाहिए अन्यथा परिणाम अनुकूल नहीं आएंगे। अनुसंधाता का कार्य उस शव साधना के समान है जो मूर्छित या मृतप्राय शरीर में चैतन्य निर्माण किया करता है।

शोध के क्षेत्र में विषय मृत प्राय होता है। शोधकर्ता मृताविषयक को अपने शोध कार्य द्वारा अमर करता है। इसके कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। हिंदी में जैसे मुक्तिबोध आदि।

रचना लिखने के लिए रचनाकार के पास जितनी प्रतिभा होनी चाहिए उतनी ही प्रतिभा अनुसंधाता के पास होनी चाहिए।

१.३.३अनुसंधान की परिभाषा :

अनुसंधान एक तरह से तथ्यान्वेषण और अर्थोन्वेषण की अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। तथ्य और सत्य इसके सर्वोच्च मूल्य हैं। अधिकांश विद्वानों ने अनुसंधान को सत्य का अन्वेषण माना है।

१. आंग्ल समीक्षक - पी. एम. कुक :- "शोध मूलतः कठोर परिश्रम पर आधारित प्रमाणिक तथ्यान्वेषण और अर्थान्वेषण है।"

२. सी. सी. क्रोफोर्ड :- "सामान्य से अधिक परिणाम प्राप्ति के लिए प्रयुक्त विशिष्ट साधन सामग्री तथा प्रणाली के समन्वय का निष्कर्ष शोध है। अर्थात तथ्य के साथ-साथ तथ्य तक पहुंचने वाली प्रक्रिया भी महत्वपूर्ण है।

३. डब्लु. एस. मोनरे :- "मूलभूत तथ्यों के आधार पर कठोर श्रम और विवेक से उपलब्ध किसी समस्या के समाधान की प्रक्रिया है।" सारांश-तथ्यों की खोज की जाती है (तथ्यनुसंधान) एक विशिष्ट प्रक्रिया द्वारा उसके गुणों को उजागर करना है। तात्पर्य तथ्यों का परिष्कार और प्रमाणीकरण भी अनुसंधान है।

४. लुंडबर्ग :-

"शोध अवलोकित सामग्री का संभावित वर्गीकरण, सत्यापन एवं साधारणीकरण करते हुए पर्याप्त कर्म विषयक और व्यवस्थित पढ़ती है।"

५. रेडमैन एवं मोरी :-

"नए ज्ञान प्राप्ति के व्यवस्थित प्रयास को हम शोध कहते हैं।"

६. पी.वी. यंग :-

"अनुसंधान एक ऐसी व्यवस्थित विधि है जिसके द्वारा नवीन तथ्यों को खोजने अथवा पुराने तथ्यों की विषयवस्तु, उनकी क्रमबद्धता, अंर्तसम्बन्ध, कार्य- कारण व्याख्या और उनके निहित नैसर्गिक नियमों के पुष्टिकरण का कार्य किया जाता है।"

७. एडवान्स लर्नरल डिक्शनरी :-

"ज्ञान के किसी भी क्षेत्र या शाखा में नवीन तथ्यों की खोज हेतु सावधानी पूर्वक की जाने वाली कोई खोजबीन या अन्वेषण।"

८. डॉ. भागीरथ मिश्र :-

"अनुसंधान के भीतर नवीन तथ्यों का, नवीन विचारों का, निष्कर्षो का, परंपराओं का, दृष्टियों का एवं कारणों का उद्घाटन होता है।"

९. परशुराम चतुर्वेदी :-

"अनुसंधान की प्रक्रिया के अंतर्गत केवल किसी वस्तु विषयक तात्विक चिंतन या गवेषणा का ही समावेश नहीं रहता है। उसके सूक्ष्म निरीक्षण और विश्लेषण को भी उचित स्थान मिला करता है। इसमें उसके प्रत्येक अंश का एक दूसरे के साथ कार्य- कारण संबंध स्थापित करने तथा उसके संश्लेषण द्वारा किसी महत्वपूर्ण निश्चय तक पहुंचाने की भी प्रधानता रहती है।"

१०. अनुसंधान की संकल्पना एवं उसकी प्रक्रिया-विधि को स्पष्ट करते हुए आचार्य नंद दुलारे वाजपेई ने कहा है कि "शोध में किसी अज्ञात तथ्य को प्रकाश में लाने और प्रतिष्ठित करने का आशय निहित होता है। शोध में बिखरे हुए तथ्यों का संयोजन और समाहार भी किया जाता है। शोध के लिए उस समस्त सामग्री का संचयन और संग्रहण आवश्यक होता है जो उस विषय या वस्तु से संबंधित है। इस समस्त संग्रह को सुव्यवस्थित रूप से सजाकर उसके आधार पर वस्तुमूलक स्थापनाएं की जाती है और निर्णय किए जाते हैं। शोध में विषय से संबंधित पूर्ववर्ती वक्तव्य दिए जाते हैं तथा उसके आधार पर निष्कर्ष का उपयास किया जाता है। फिर उस निष्कर्ष की पुष्टि करने के लिए विरोधी अभिमतों का खंडन और निराकरण कर नए निर्णय की प्रतिष्ठा की जाती है या नया निर्णय जब स्वतंत्र विचार सारणी के रूप में उपस्थित होता है तब उसे 'थीसिस' या 'प्रबंध' कहते हैं।

१.३.४ विषय निष्कर्ष :-

अनुसंधान में नए तथ्यों की खोज की जाती है। पुराने तथ्यों को नए आयाम से देखा परखा जाता है। उसकी त्रुटियों को दूर किया जाता है। यह प्रक्रिया अंतर्बाह्य साक्ष्यों के आधार पर नितांत वैज्ञानिक ढंग से संपन्न कराई जाती है। विशिष्ट प्रक्रिया द्वारा उसके गुणों को उजागर किया जाता है। तात्पर्य यह है कि तथ्यों का परिष्कार और प्रमाणीकरण ही अनुसंधान है। इसमें मुख्यतः तीन बातों का प्रतिपादन किया जाता है-

1. गहन तथा गंभीर तथ्यों का अध्ययन अनुसंधान है।
2. कठोर परिश्रम, विवेकपूर्ण लगन, एकनिष्ठता के आधार पर किसी महत्वपूर्ण नवीन ज्ञानवर्धक सामग्री को प्रस्तुत करना या उसकी या किसी ज्ञान तथ्य की मौलिक व्याख्या प्रस्तुत करना अनुसंधान है।
3. ज्ञान की किसी संपन्न शाखा का जिज्ञासापूर्वक परिश्रम, तटस्थ दृष्टि एवं विवेकपूर्ण मेधा से निष्कर्ष पूर्वक किया हुआ अन्वेषण अनुसंधान है।

यह प्रमुख तथा नवीन तथ्यों की खोज करना है। परंतु अब प्राप्त तथ्यों की नवीन मौलिक व्याख्या अनुसंधान के रूप में स्वीकृत की जाती है।

अनुसंधान कुछ समय प्रमुखत: नवीन तथ्यों की खोज तक सीमित था। आज यह बात पुराने तथ्यों की नवीन व्याख्या अनुसंधान के अंतर्गत आती है। अनुसंधान में तथ्यों की खोज ही प्राप्त नहीं, अपितु एक विशिष्ट प्रक्रिया द्वारा अनेक गुणों को उजागर करना ही अनुसंधान का उद्देश्य है। तथ्य का परिष्कार प्रमाणिक अनुसंधान की अनिवार्य शर्त है।

अनुसंधान के स्वरूप के विवेचन के लिए अनुसंधान के महत्व को देखना आवश्यक है।

अनुसंधान का महत्व एवं आवश्यकता :-

मनुष्य जिज्ञासू वृत्ति का प्राणी है। इसी कारण उसमें अनुसंधान का गुणधर्म सदैव मौजूद रहता है। अनुसंधान की जिज्ञासा का प्रचार मानव जीवन के विविध पहलुओं पर किया गया है। अनुसंधान के मानव जाति की अनिवार्यता, आवश्यकता तथा महत्व को निम्नलिखित बातों से स्पष्ट किया जा सकता है।

१. भौतिक दृष्टि से समृद्ध सभ्यता विकास के लिए अनुसंधान महत्वपूर्ण है।

२. मन हृदय बुद्धि की मांगों को पूर्ण करना ही अनुसंधान है।

   मन- कल्पना की उड़ान।

   हृदय- कला का निर्माण करता है।

   बुद्धि- विचार का दर्शन करती है।

३. मनुष्य प्राणी के पास जिज्ञासा वृत्ति है जिससे वह मानव तथा प्रकृति को जानने के लिए प्रयत्नरत रहता है। यही जानने के भाव (जिज्ञासा) ही अनुसंधान है।

४. मानव को विविधता और श्रेष्ठ प्रगति के लिए, अपनी प्रगति के लिए अनुसंधान की आवश्यकता है।

साहित्यिक तथा भाषा के क्रमिक विकास परंपरा को जानने एवं उसके अंत: सूत्रों को समझने के लिए अनुसंधान की आवश्यकता है।

१. मानव जाति के प्राप्त ज्ञान में प्रामाणिकता लाने के लिए।

२. ज्ञान के क्षेत्र में और नए-नए क्षेत्रों के उद्घाटन के लिए।

३. अध्ययन में वैज्ञानिकता और विशेषज्ञता लाने के लिए।

४. तर्कमूलक तथा तथ्यमूलक ज्ञान की वैज्ञानिक स्थापना के लिए अनुसंधान की आवश्यकता है।

५. अंधविश्वास, भावुकता का निवारण करने के लिए।

६. ज्ञान की नई व्याख्या के लिए।

७. बुद्ध के उपदेश की तरह मनुष्य को 'अंत: दीप भव' अर्थात स्वयं प्रकाशित होने के लिए।

८. ज्ञान क्षेत्र में वृद्धि कर आनंद प्राप्ति के लिए।

९. भाव पक्ष के साथ-साथ ज्ञान पक्ष की महत्ता को स्थापित करने के लिए।

१०. चिंतन एवं अनुभूति के विस्तार के लिए।

११. ज्ञान के प्रति मानव की चिर आकांक्षा की पूर्ति, मेधा का विकास, कार्यक्षमता में वृद्धि के लिए, अपने श्रमभार और कष्टों को कम करने के लिए अनुसंधान की आवश्यकता है।

१२. अनुसंधान द्वारा किसी देश का दृश्य और मस्तिष्क उन्नत होता है और नई चेतना प्राप्त करता है।

१३. अनुसंधान सावधानता के समान मृत्यु में छिपे जीवन का उद्घाटन कर विज्ञान से देश एवं संपूर्ण मानवता को समृद्ध करता है।

१४. सैद्धांतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पुराने तथ्यों का सत्यापन, तथ्यों की खोज, सिद्धांतों का निर्माण तथा प्रशिक्षण के लिए।

१५. शिक्षा की प्रक्रिया बौद्धिक स्तर पर चिंतनात्मक होती है और उसके द्वारा सत्य तथा मूल्य की प्रतिस्थापन की जाती है।

१६. व्यवहारिक जीवन व्यवहार की समस्याओं को सुलझाने के लिए। सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, श्रमिक,मूल्यात्मक नैतिक समस्याओं के निर्माण तथा समाधान को ढूंढने के लिए।

१७. राजनीति तथा आर्थिक वर्चस्व के साथ सामाजिक तथा धार्मिक वर्चस्व सत्ता विषयक मीमांसा करते हुए उसे सुलझाने के लिए।

१८. व्यक्तिगत रुचि, आनंद एवं रोजगार के साथ समाज उन्नति तथा व्यक्ति प्रतिष्ठा के लिए।

निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि अनुसंधान प्रक्रिया के द्वारा किसी वस्तु का मूल सृजन नहीं होता किंतु उस वस्तु में निहित शक्तियों को स्थापित किया जा सकता है । अनेक वस्तुओं के मिश्रण, तुलना एवं वैष्यम्य से भी उनकी अनेक क्षमताओं का पता लगाया जा सकता है ।

अतः प्रभाववश शोध तंत्र द्वारा उद्घाटित तथ्यों की प्रथम एवं प्रभावात्मक झलक मिलते ही हम उसे मूल सृष्टि या रचना कहते हैं। तात्पर्य यह है कि अनुसंधान स्वयं तत्व नहीं तत्वानुसरण अनुसंधान है । और तत्वानुसार अनुसंधान का अर्थ है तत्वों में निहित रचनातंत्र किसी वस्तु के रचना तंत्र का पूर्ण ज्ञान होते ही विश्लेषण एवं संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा उसकी शक्तियों का उद्घाटन किया जाता है। विद्यार्थी अपनी निजी साधन एवं प्रतिभा से मूलतः समर्थ विद्वान बनता है। किंतु गुरु की अध्ययन तंत्र संबंधी भूमिका के बिना विद्यार्थी की समग्र क्षमता अनुद्घटित ही रह जाती है । शोध तंत्र अनुसंधान प्रक्रिया में असाधारण महत्व रखता है। शोध तंत्र को अवगत करके ही शोधार्थी शोध कार्य में सफलता प्राप्त कर सकता है।

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि अनुसंधान मानव के लिए अनिवार्य है और इसी में ही उसकी आवश्यकता निहित है।

१.४ सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित विषयों से अवगत हुए।

1. अनुसंधान का अर्थ, परिभाषा तथा स्वरूप को समझ सके।
2. अनुसंधान के प्रयोजनों विषयी जानकारी हासिल कर सके।
3. साहित्य तथा साहित्य अनुसंधान का अध्ययन किया।

१.५ लघुत्तरी प्रश्न

१. अनुसंधान शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई ?

२. अनुसंधान शब्द का अर्थ लिखिए ?

३. अनुसन्धान के पर्याय शब्द लिखिए |

४. "नए ज्ञान प्राप्ति के व्यवस्थित प्रयास को हम शोध कहते हैं।" अनुसन्धान के सम्बन्ध में उक्त परिभाषा किस विद्वान ने दी है ?

१.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. अनुसंधान का अर्थ, परिभाषा तथा स्वरूप को समझाइए |

२. अनुसन्धान के पर्यायी शब्दों का विश्लेषण कीजिए |

३. अनुसन्धान शब्द का अर्थ बताते हुए उसके आवश्यकता और महत्व का वर्णन कीजिए |

१.७ संदर्भ ग्रन्थ

१. शोध प्रविधि - विनय मोहन शर्मा राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली

२. शोध: स्वरूप एवं मानक व्यवहारिक कार्यविधि - ले. बैजनाथ सिंहल, वाणी प्रकाशन, नवीन शोध विज्ञान

३. अनुसंधान: स्वरूप और आयाम, - सं. डॉ उमाकांत गुप्त डॉ. बृजरतन जोशी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली

✞✞✞✞

२

अनुसंधान के मूल तत्व

इकाई की रूपरेखा :

२.१ उद्देश्य

२.२ प्रस्तावना

२.३ अनुसंधान के मूल तत्व

२.४ अनुसंधान- वैज्ञानिक, समाज वैज्ञानिक एवं मानविकी

२.४.१ वैज्ञानिक अनुसंधान

२.४.२ समाज वैज्ञानिक अनुसंधान

२.४.३ मानविकी अनुसंधान

२.५ सारांश

२.६ लघुत्तरी प्रश्न

२.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न

२.८ संदर्भ ग्रन्थ

२.१ उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको निम्नलिखित विषयों की जानकारी प्राप्त होगी।

१. अनुसंधान के मूल तत्वों से परिचित होंगे।

२. अनुसंधान के विविध रूपों का परिचय होगा।

३. अनुसंधान की मूलभूत संरचना से अवगत होंगे।

२.२ प्रस्तावना

अनुसंधान 'ज्ञान के खोज' की यात्रा है। जो 'सत्य को प्राप्त' करने के प्रयास से आरंभ हो चुका है। प्रत्येक क्षेत्र में अनुसंधान की प्रक्रिया का उपयोग किया जाता है। साहित्य, भाषा के क्षेत्र में भी अनुसंधान की वैज्ञानिक प्रक्रिया एवं प्रविधि की जानकारी लेकर ज्ञान के नए क्षेत्रों का विस्तार तथा ज्ञान के नवीनीकरण की उद्देश्य पूर्ति की जाती है। अनुसंधान में व्यक्ति, संस्थाओं का योगदान अधिक है।

२.३अनुसंधान के मूल तत्व

शोध के स्वरूप तथा उसकी प्रविधि प्रक्रिया के संबंध में विद्वानों में मतभेद पाए जाते हैं। शोध संबंधी विविध दृष्टिकोणों के आधार पर ही शोध तत्वों को सामान्य रूप में चित्रांकित किया जा सकता है।

विनय मोहन शर्मा के अनुसार " खोज एक स्वत: प्रवाहमान क्रिया है जिसका आदि तो है पर अंत नहीं है ।"(शोध प्रविधि पृष्ठ- 4) आगे वे कहते हैं कि, "भली भांति व्याख्या सहित परिकल्पना या समस्या को हल करने की व्यवस्थित तथा तटस्थ प्रक्रिया का नाम ही शोध है।"(वही पृष्ठ - 6) इसका तात्पर्य यह है कि शोध की प्रविधि तथा प्रक्रिया दोनों अपने आप में समस्या समाधान की वैज्ञानिक तथा निष्पक्ष पद्धति है। यह मानवीय भाव बोध तथा साहित्यिक अभिव्यक्ति, विचारधारा, संवेदना तथा शैली द्वारा विषय प्रतिपादन को तर्काधारित, वैज्ञानिक पद्धति एवं प्रक्रिया को स्पष्ट करता है।

इसी प्रक्रिया में हम यह समझ सकते हैं कि शोध का क्षेत्र अस्पष्ट, अपरिचित, अव्यवस्थित, तथा क्रमहीन होता है। उसको ज्ञान व्यवस्था के द्वारा जांचते- परखते हुए, नवीन दृष्टि प्रदान करते हुए, नए संदर्भ देते हुए वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में उपयोगी बनाया जाता है। तिलक सिंह के मतानुसार "शोध ज्ञान की नवीन सृष्टि नहीं, अस्तित्वहीन ज्ञान की उपलब्धि नहीं, दो भिन्न ज्ञान तत्वों से निर्मित तृतीय नवीन वस्तु नहीं, विभिन्न तथ्य समुच्चयों के विश्लेषण से प्राप्त शाश्वत अपरिवर्तनशील सनातन ज्ञान तत्व नहीं। यह तो सृष्टि में विद्यमान ज्ञान का संग्रह, संग्रहित ज्ञान का व्यवस्थापन, संश्लिष्ट तथ्यों का नवीन दृष्टि से विश्लेषण, विश्लेषित तथ्यों से प्राप्त मानवोपयोगी तथा प्रमाणिक ज्ञान- तत्व का उपस्थापन और विषय विशेष से संबंधित अद्यावधि प्राप्त ज्ञान राशि की अभिवृद्धि है।"(नवीन शोध विज्ञान पृष्ठ- 18) रामगोपाल शर्मा, डॉ. दिनेश के अनुसार "कोई भी साहित्यिक सत्य जब परिष्कृत, प्रमाणित संदेहरहित और तथ्य पूर्ण होकर सामने आता है तब वह शोध का परिणाम बनता है।"(साहित्यिक शोध के सिद्धांत और समस्याएं पृष्ठ 33)

डॉ. तिलक सिंह ने अनुसंधान के दो तथ्यों को स्वीकारा है- एक, प्रक्रिया ही शोध है।

दो, मानव विकास ही शोध है।(नवीन शोध विज्ञान पृष्ठ-19)

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने मनुष्य के बाह्य तथा अंतर- विकास की कड़ियों का अनुसंधान दो प्रकार में माना है। स्थूल और सूक्ष्म।

अधिकांश विद्वान शोध प्रक्रिया को ही शोध मानते हैं। किंतु डॉ. तिलक सिंह कहते हैं "यह मान्यता ज्ञान के स्वरूप के विषय में तो सत्य है, शोध के स्वरूप के विषय में नहीं। ज्ञान प्राकृतिक है, शोध मानवीय। वर्तमान शोध मान्यता के अनुसार संपूर्ण ज्ञान शोध नहीं है। बुद्धिग्राह्य तथा परिमार्जित ज्ञान ही शोध है। शोध ज्ञान-क्षेत्र का नियमन ही नहीं करती वरन बुद्धिग्राह्य ज्ञान का परिसीमन भी करता है।" (नवीन शोध विज्ञान पृष्ठ 19-20) शोध तत्वों को समग्रता में बांधना असंभव सा है। उसकी शास्त्रीयता तथा संपूर्णत: को जितना परिभाषा में व्यक्त करते जाएंगे उतनी ही वह छूटती जाएगी। डॉ. तिलक सिंह ने उसे व्यक्त किया है-शोध विज्ञान ज्ञान की वह धारा है जिसमें अज्ञान तथा अप्राप्त तत्वों की खोज, ज्ञान तथा प्राप्त

तत्वों का नवीन आख्यान, अन्वेषक तथा निर्देशक सहभाव से अपेक्षित तथा स्तरीय प्रतिपादन शैली के द्वारा व्यवस्थित प्रक्रिया से इस प्रकार करते हैं कि ज्ञान क्षेत्र की सीमाओं का विस्तार होता है।"(वही पृष्ठ 20) इसी प्रक्रिया के तहत उन्होंने शोध के निम्न तत्वों का प्रतिपादन किया है-

१. अज्ञात को ज्ञात करना

२. ज्ञान का पुनर्विवेचन

३. व्यवस्थित प्रक्रिया

४. वैज्ञानिक शैली

५. ज्ञान क्षेत्र की सीमाओं का विस्तार

६. आलोचनात्मक परीक्षण तथा प्रामाणिक निष्कर्ष

१. अज्ञात को ज्ञात करना :-

शोध विषय मूलतः अज्ञात या अल्प ज्ञात होता है। शोधार्थी शोध के जरिए ज्ञात या लुप्त कड़ियों को जोड़ते हुए अज्ञात तथा अस्तित्वहीन विषय को ज्ञात करता है। वह एक ऐसी चीज को ढूंढता है जो प्रायः लुप्त हो चुकी होती है। या काल प्रवाह में नष्ट हो चुकी होती है। अव्यवस्थित या विशृंखलित हो चुकी होती है। अक्रमबद्ध या स्मृतिगत हो चुकी होती है। ऐसे ही अज्ञात को ज्ञात करना शोध का प्रतिपाद्य होता है। शोधार्थी का लक्ष्य होना चाहिए कि यह जितना अदृश्य होता है, उतना दृश्यमान होता जाए | पांडुलिपियों की खोज और अप्राप्त या अज्ञात में ज्ञात की यात्रा है। लोक साहित्य लोक भाषा का तथ्यानुसंधान इसी क्रम में होता है।

शोधार्थी का कर्तव्य होता है कि वह मूल स्रोतों से प्रमाणों की जांच करें और मूल स्रोतों से मिलाकर तथ्यों को देखें और पहचानें। इसके अलावा यह भी देखे कि जिस काल में या जिस समय में उन तथ्यों पर टिप्पणी की जा रही है उस काल में ये तथ्य कितने प्रासंगिक हैं। जैसे यदि हम देखें कि जगदीश गुप्त ने 'शंबूक' नामक खंडकाव्य लिखा, तो इस खंडकाव्य के अंतर्गत जिस शंबूक की कथा कहते हैं। वह शंबूक की कथा को यदि हम वाल्मीकि के रामायण को प्रमाण माने तो वह अपने प्रक्षिप्त रूप में आया है। क्योंकि वाल्मीकि के रामायण का उत्तर कांड में राम के संवाद, भाषा, व्यवहार एवं आदर्श-चरित्र वह पूर्ववर्ती कांडों के राम के चरित्र आदर्श एवं भाषा से मेल नहीं खाते हैं, तो इससे प्रमाणिक विद्वानों को लगा कि यह बाद में प्रक्षिप्त किया गया है। हालांकि इसी का आधार लेकर बाद में भवभूति ने उत्तररामचरितम् की रचना की, जिसमें शंबूक का ज़िक्र किया है। हम जगदीश गुप्त के 'शंबूक' का या नरेश मेहता के 'संशय की एक रात' का या 'शबरी' पर जब हम शोध करने को उद्धत होते हैं या शोध करने की तैयारी करें तो सबसे पहले हम उन मूल स्रोतों को देखें जहां से कवि या रचनाकार ने लिया है। जैसे 'राम की शक्ति पूजा' में निराला ने तीन संदर्भ कथाओं को शामिल किया। पहला वाल्मीकि का 'रामायण' दूसरा कृतवासी का 'कृत्तिवासी रामायण' और तीसरा तुलसीदास का 'रामचरितमानस'। निराला इन तीनों से संदर्भ लेकर जब अपनी बात कहते हैं, तो जो इन तीनों संदर्भों का भाषिक महत्व है या भाषिक वैशिष्ट है, उसे भी हमें ध्यान में रखना

चाहिए। तो इस तरह से शोध में ऐसा तो नहीं है कि हम पूरी तरह से अज्ञात वस्तुओं को या अज्ञात तथ्यों को ही जांचते है या उसकी खोज करते हैं, जैसे वैज्ञानिक करते हैं। वैज्ञानिकों के शोध में ऐसा भी हो सकता है कि जो दिख तो रहा है लेकिन स्पष्ट नहीं हो पा रहा है। वहीँ सामाजिक विज्ञान में, या साहित्य में, या भाषा में शोधार्थी का कर्तव्य होता है कि जो चीजें अस्पष्ट है, धुंधली है, जो ठीक से नज़र नहीं आ रही है उन्हें वह दृश्यमान करे। तो यह एक शोध प्रवृत्ति का महत्वपूर्ण अंग हो सकता है। इन सब के अलावा इसमें तीन चीजों का ख़्याल रखना है महत्वपूर्ण होता है। जिस विषय वस्तु का या जिस तथ्य का हम विश्लेषण कर रहे हैं उस विश्लेषण का आदि स्रोत क्या है। जैसे वाल्मीकि रामायण में राम कथाओं का आदि स्रोत है। वैसे ही श्रीमद्भागवत कृष्ण कथाओं का आदि स्रोत है। एक तो हमें आदि स्रोतों का संधान करना है, दूसरे आदि स्रोतों से अलग अगर कवि ने किसी और का सहारा लिया जैसे निराला ने अपनी बात कहने के लिए कृतवासी रामायण का सहारा लिया है जो बांग्ला भाषा का काव्य है। तो शोधार्थी को यह ध्यान रखना होगा कि बंगाल की परिस्थितियां, बंगाल की संस्कृति, बंगाल की उपासना पद्धति का असर उस पर अवश्य होगा। इस तरह हमें इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखना जरूरी है। तीसरा जो मूल रचना हमारे सामने है। तो रचना के सभी मूल स्रोत और उनका काल, उनकी संस्कृति उन सभी के संदर्भ में ही हमें जो हमारे वर्तमान में विषय वस्तु एवं तथ्य हैं उनका विश्लेषण करना चाहिए। तो इस तरह से जो अस्पष्ट है अज्ञात पूरी तरह से नहीं कह सकते हैं, क्योंकि यह तो विज्ञान में भी नहीं होता है कि जो पूरी तरह से अज्ञात हो। जो अस्पष्ट है, धुंधला है साफ नज़र नहीं आ रहा है या हमारे वर्तमान के संदर्भों पर खरा नहीं उतर रहा है। तो शोधार्थी उक्त सभी तथ्यों का अनुसरण करके शोध करता है तो वह वर्तमान के संदर्भों पर खरा उतरने में पारदर्शक और प्रमाणिकता के साथ आगे बढ़ेगा और अपने शोध को सही दिशा में ले जायगा |

२. ज्ञान का पुनर्विवेचन :-

जब तथ्य एवं सत्य ज्ञात हो जाते हैं तब उसके पुनर्विवेचन की आवश्यकता होती है । बार-बार उसे नई दृष्टि से जांच- परख करनी होती है । उसका सूक्ष्म पुनरावलोकन करना होता है । जिसके परिणाम स्वरूप तथ्य ज्ञान तक सीमित न रहकर वह मानव जीवन मूल्यों का उद्घाटन कर सके तथा उसका नीतांत नया पक्ष सामने आ सके । डॉ.तिलक सिंह इसे वस्तुत: यह तथ्यानुसंधान न होकर तत्वानुसंधान है । तत्व तथ्याश्रित हैं। यह शोध का अंतरंग पक्ष है । यही मूल शोध है । इसे ज्ञान तथ्यों का पुनराख्यान भी कहते हैं । (नवीन शोध विज्ञान पृष्ठ 21 प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली सं.2011) भाषा एवं साहित्य के संदर्भ में इस शोध दृष्टि को अपनाने से उच्च कोटि के शोध की संभावना बढ़ जाती है ।

३. व्यवस्थित प्रक्रिया :-

प्रक्रिया की दृष्टि से डॉ. तिलक सिंह ने शोध के तीन भाग स्वीकारे हैं- 1.भूमिका 2.प्रबंध 3.निष्कर्ष इन तीनों को शोध व्यवस्था का अंग भी कहते हैं। (वही पृष्ठ. 21) शोध कार्य हेतु शोधार्थी जिस विषय को चुनता है उसके निर्वाचन के लिए विवेचन -विश्लेषण के लिए सुव्यवस्थित, क्रमिक प्रक्रिया का अनुपालन शोधार्थी को करना होता है। इसके लिए उसमें

अपार श्रम करने की तैयारी, धैर्य, निरंतरता एवं सद् विवेक से कार्य करना जरूरी होता है। इसके लिए शोध निर्देशक तथा शोधार्थी के मध्य निरंतर संवाद एवं दृष्टिगत स्पष्टता होना जरूरी होता है। शोध प्रबंध आदि से अंत तक व्यवस्थित प्रक्रिया का हिस्सा है। इसमें व्यवस्थित सामग्री का संकलन, चयन, विश्लेषण भी व्यवस्थित क्रमबद्ध तरीके से उपयोगी होता है।

४. वैज्ञानिक शैली :-

डॉ नगेंद्र ने कहा है कि "वैज्ञानिक प्रविधि एवं प्रक्रिया अनुसंधान के लिए सर्वथा अनिवार्य है। संदर्भ आदि के लिए पूर्ण विवरण, अनुक्रमणिका, परिशिष्ट, ग्रंथसूची, पाद्टिप्पणियां आदि की व्यवस्था इसी प्रविधि के अंतर्गत आती है। वास्तव में यह प्रविधि या शिल्पविज्ञान आलोचना के लिए अनुपयोगी नहीं है।" (शोध और सिद्धांत पृष्ठ 18) परंतु शोधकार्य आलोचनात्मक कार्य नहीं है। इसका ध्यान अनुसंधाता को सदैव होना चाहिए। शोध कार्य वस्तुनिष्ठ, निष्पक्ष तथा निरपेक्ष होता है। आत्मनिष्ठता आलोचना का गुण है वस्तुनिष्ठता अनुसंधान एवं अनुसंधाता को शोध लेखन के लिए वैज्ञानिक पद्धति, प्रविधि, प्रक्रिया एवं शैली का प्रयोग शोध के स्तर को बढ़ाता है।

५. ज्ञान क्षेत्र की सीमाओं का विस्तार :-

हमने पहले ही कहा है कि शोध नवीन तथ्यों का, सत्यों का विस्तार है। इसी क्रम में वह ज्ञान क्षेत्र का विस्तार है। शोधार्थी को अपनी नई दृष्टि से विषय को वर्तमान में लाकर तथा उसके कालबोध से परिचित होकर नए तथ्यों का प्रतिपादन करना होगा । यह शोधार्थी का दायित्व है कि किस तरह नए शोध मूल्यों से शोध को महत्वपूर्ण बनाएं इसके बारे में सोचना होगा। "ज्ञान क्षेत्र का विस्तार ही मौलिकता है और यह मौलिकता नवीन विषय निर्वाचन, नवीन पद्धति तथा कहने के नवीन ढंगों में सभी से अथवा किसी एक से भी संबध्द हो सकती है। तथ्य शोध नहीं है, प्रक्रिया शोध नहीं है तथा प्रविधि शोध नहीं है, ये तो शोध के साधन है। यह साधन दो प्रकार के हैं- 1. उपादान साधन 2. निमित्त साधन। तथ्य उपादान साधन हैं , यंत्रादि तथ्य संग्रह तथा विश्लेषण के उपकरण भी साधन हैं तथा शोधार्थी निमित्त साधन हैं। इन साधनों का साध्व है ज्ञान -क्षेत्र की सीमाओं का विस्तार। इस प्रकार उक्त साधन साध्व सहसंबंध ही शोध है।" (वही पृष्ठ 22) शोध में स्थापित मूल्य ज्ञान का विस्तार करते हैं। इसलिए ज्ञान विस्तार की संभावनाएं अनुसंधान में ही दिखाई देती हैं न की आलोचना में। आलोचना एक आयामी होती है अनुसंधान बहुआयामी होता है।

६. आलोचनात्मक परीक्षण तथा प्रमाणिक निष्कर्ष :-

शोध की प्रक्रिया में आलोचना सहायक की भूमिका निभाती है किंतु आलोचनात्मक निष्कर्ष शोध नहीं होते। एक सीमा तक अनुसंधान में आलोचनात्मक प्रणाली का प्रयोग उचित होता है। तथ्य संग्रह के बाद तथ्यों का वर्गीकरण विश्लेषण तथा विवेचन आलोचना की क्षेत्र परिधि में आते हैं। विशेषकर वर्गीकरण- विश्लेषण इसके अनुशासन क्षेत्र में आते हैं। शोध का विवेचन निर्वैयक्तिक होता है। (वही पृष्ठ 22) किंतु अनुसंधाता को वैज्ञानिक प्रतिभा का होना जरूरी है। आलोचनात्मक प्रतिभा स्व, स्व-वर्ग हितोपासक होती है। अनुसंधानात्मक प्रतिभा सर्वजन- हिताय सर्वजन- सुखाय होती है। इसी से प्रमाणिक निष्कर्ष प्राप्त किया जा सकते हैं।

"शोधार्थी में आलोचनात्मक प्रतिभा का भी होना अनिवार्य है ताकि वह उपयोगी- अनुपयोगी तथा वांछित- अवांछित तथ्यों की पहचान कर सके और वैज्ञानिक- विवेचन के लिए प्रमाणिक सामग्री तैयार कर सके। तथ्य जितने प्रमाणिक होंगे निष्कर्ष अथवा निर्णय उतने सर्वाग्राह्य, सर्वमान्य तथा प्रमाणित होंगे। आलोचना तथ्य- ज्ञान कराती है। उनकी प्रकृति तथा उनके स्वरूप को निर्धारित करती है। शोध में प्रयोग हेतु कच्ची सामग्री का संशोधन करती है। शोध -प्रविधि इस संशोधित सामग्री के वैज्ञानिक प्रयोग की विधि निर्धारित करती है। तब शोध मूल्य प्रस्तुत होते हैं। ये शोध मूल्य ही नहीं शोध के प्रामाणिक निष्कर्ष अथवा शोधार्थी के ठोस निर्णय होते हैं।" (वही पृष्ठ 22) शोध में आलोचनात्मक विवेक और अनुसंधात्मक प्रयोग की संभावना शोध स्तर को बढ़ाती है। दूसरे अर्थ में आलोचनात्मक परीक्षण -निरीक्षण से अनुसंधान के प्रामाणिक निष्कर्ष प्रतिपादित होते हैं। शोध तत्वों के यथायोग्य प्रयोग से उसकी क्रियाविधि से ही प्रामाणिक निष्कर्ष तक शोधार्थी पहुंचता है।

२.४ अनुसंधान- वैज्ञानिक, समाज वैज्ञानिक एवं मानविकी अनुसंधान

शोध की संपूर्ण प्रविधि-प्रक्रिया कार्यविधि वैज्ञानिक पद्धति की होती है। उसकी प्रकल्पना से लेकर शोध निष्कर्षों तक ज्ञान प्राप्ति के लिए वैज्ञानिक पद्धति को ही अपनाया जाता है। स्टुअर्ट का कथन है कि विज्ञान पद्धति में निहित है, विषय वस्तु में नहीं।" (शोध प्रविधि- विनयमोहन शर्मा, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा- 201301 च.सं. 2010 पृष्ठ 9) इसी बात को ध्यान में रखते हुए डॉ. विनय मोहन शर्मा कहते हैं"विषय वस्तु' अर्थात अनुसंधेय वस्तु भिन्न-भिन्न हो सकती हैं पर उनका ज्ञान प्राप्त करने की प्रविधि का एक ही मार्ग है- वह है विज्ञान का।" (वही पृष्ठ 9)

वैज्ञानिक अध्ययन के चार सोपानों को लुंडबर्ग ने व्यक्त किया है-1."उद्देश्यहीन निरीक्षण 2.व्यवस्थित अनुसंधान 3.विषय निश्चिती 4.कामचलाऊ परिकल्पना या नई परिकल्पना।" (वही पृष्ठ 9) क्रमशः इसी सोपानों के द्वारा शोध कार्य में प्रगति एवं गति होती है ।आती है। शोधारंभ में जेम्स वैट की तरह उद्देश्यहीन निरीक्षण से ही मस्तिष्क में नए विचार शक्ति का उदय होता है। दूसरे सोपान में शोधार्थी की बुद्धि परिपक्व होकर शैने- शैने तार्किक प्रणाली द्वारा सोद्देश्य तथा क्रमबद्ध तरीके से अनुसंधान से नया ज्ञान प्राप्त करता है। तीसरे सोपान में विषय तो निश्चित होता जाता है किंतु कोई परिकल्पना का निर्वाचन नहीं करता।" (वही पृष्ठ 9) ऐसे में शोध दिशा अस्पष्ट रहती है। परिणामत: अध्येता चतुर्थ सोपान में कामचलाऊ परिकल्पना या नई परिकल्पना द्वारा शोधारंभ करता है। "इससे पूर्व निर्धारित नियम या सिद्धांत की परीक्षा मात्र की जाती है। परीक्षा के लिए नए-नए प्रयोग किए जाते हैं।" (वही पृष्ठ 9) और अंत इन्हीं प्रयोगों की सफलता नए ज्ञान की प्रस्थापना करना है। समस्याओं को सुलझाने का सर्वोत्तम तरीका वैज्ञानिक अध्ययन का है। इसे मानवीय जीवन के भौतिक एवं मानसिक विकास तथा प्रगति प्राप्त की जाती है। जॉर्जबर्ग के अनुसार शोध की वैज्ञानिक प्रणाली में "वैज्ञानिक निरीक्षण, विभाजन और तथ्यों की व्याख्या है।" (वही पृष्ठ 10) वैज्ञानिक निरीक्षण सोदद्दपूर्ण होता है। उसमें निश्चित विचार, दशा, दिशा तय होती है। साहित्य कृतियों के संदर्भ में सहज भाव से पठान पाठक को शोधार्थी को आनंद प्राप्त करना है किंतु उसके भाव एवं कला पक्ष पर चिंतन की प्रक्रिया उसमें निहित सभी प्रकार के विचारों, समस्याओं, शैलियों का व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत करने का मार्ग दिखाया है।

विशेषतः मानविकी विज्ञान में यह अधिक उपयोगी होता है।

"वैज्ञानिक पद्धति द्वारा निकाले गए निष्कर्ष 'सार्वदेशिक' एवं 'सार्वकालिक' होते हैं।" (वही पृष्ठ 10) किंतु यह प्रत्येक वैज्ञानिक नियम के संबंध में सत्य सिद्ध नहीं होती।" परिस्थिति और कतिपय शर्तों के साथ ही वैज्ञानिक नियमों की अकाट्यता सिद्ध हो सकती है। शोधकर्ताओं के नए आविष्कारों ने विज्ञान जगत की मान्यताओं को खंडित कर दिया है।" (वही पृष्ठ 10) विज्ञान की अनुमानित परिकल्पना किसी तथ्य के सिद्धांत का शोधन कर सकती है। जिससे जीनियस वैज्ञानिक पैदा होते हैं। न्यूटन, जेम्स वैट, आइन्सटाइन, स्टीफन हॉकिंग आदि उदाहरण दिए जा सकते हैं।

२.४.१ समाज विज्ञान वैज्ञानिक अध्ययन के द्वारा सामान्य समाजशास्त्रीय साधनों का आश्रय लेकर सामाजिक नियमों की व्यवहार्यता की जांच की जाती है। और मानवीय जीवन व्यवहार का आकलन प्रस्तुत किया जाता है।

विज्ञान या वैज्ञानिक अध्ययन में भौतिक नियमों, वस्तुओं के संबंध अध्ययन किया जाता है। जैसे द्रव पदार्थ की स्थिति, गति, उत्पत्ति, विनाश आदि के संदर्भ में ठोस निष्कर्षो का प्रतिपादन किया जाता है। जिससे प्रकृति, प्रकृतिक जीव सृष्टि के संघटक तत्वों तथा उनकी शक्तियों का अनुसंधान किया जाता है। “सामाजिक व मानविकी के विषयों के अनुसंधान का लक्ष्य मानव की जिजीविषा के विविध स्तरों का उद्घाटन है अर्थात विज्ञान में शुद्ध वस्तु मूलक एवं मानव संबंध निरपेक्ष एवं चौकस अनुसंधान को ही स्थान है।" (अनुसंधान: स्वरूप और आयाम, सं. डॉ उमाकांत गुप्त, डॉ.बृजरतन जोशी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्र.सं. 2016 पृष्ठ 57) किंतु सामाजिक विज्ञान में मानव संदर्भ जुड़े होते हैं। इसलिए समाजशास्त्र का अधिकांश हिस्सा इस अध्ययन में जुड़ जाता है। विज्ञान जैसे भौतिक जीवन का अध्ययन अनुसंधान के द्वारा सुकरना लाने में सहयोगी बनता है। वैसे सामाजिक वैज्ञानिक अध्ययन मानवीय जीवन श्रृंखलाओं से बंधे विविध संदर्भों द्वारा व्यक्ति जीवन पर नियंत्रण तथा उसे मुक्त कराने के चिंतन की प्रक्रिया है। यह पूर्णतः निर्लिप्त नहीं होता। शोधकर्ता के जीवन संस्कारों से कभी-कभी मुक्त नहीं होता। इसलिए अधिकांश बार शोधकर्ता, आलोचक बन जाता है। और किसी कवि लेखक के भावविश्व में अपने आप को बांध देता है। जैसे रामचंद्र शुक्ल ने अपने आप को तुलसीदास के भाव विश्व के साथ बांध दिया। इसलिए तुलसीदास की कमजोरियां, मान्यताएं, विश्वास रामचंद्र शुक्ल के हो जाते हैं। जिससे अलग होना असंभव होता है अथवा कामायनीकार जयशंकर प्रसाद मनु नियमों, से व्यवस्था से, उनसे जुड़ी मानसिकता से अपने आप को अलग नहीं कर पाते। संघर्ष सर्ग में वर्ण- व्यवस्था की निर्मिती स्वयं ने कैसे की और किस प्रकार के दैववादी, विश्वासी भोगवादी, उपभोक्तावादी समाज निर्मिती का विफल सपना लेकर आनंदवाद में पलायन के लिए विवश हो जाते हैं यह हम जानते हैं। इसलिए समाज वैज्ञानिक अनुसंधान मानविकी अनुसंधान का मार्ग प्रशस्त्र करता है।

चूंकि साहित्य अनुसंधान में यह दोनों बराबर अपनी अपनी भूमिका का वैज्ञानिक निर्वहन करते हैं । साहित्यिक अनुसंधान का शोध कार्य समाज वैज्ञानिक रूप में साहित्यिक श्रेणी अध्ययन के अंतर्गत आता है । वस्तुत: साहित्यिक शोध प्रकारांतर से समाज वैज्ञानिक तथा मानविकी अनुसंधान है।

२.४.२ समाज वैज्ञानिक अनुसंधान :-

समाज वैज्ञानिक अध्ययन में साहित्यिक अनुसंधाता की भूमिका पर विचार करना जरूरी है। समाज वैज्ञानिक अनुसंधाता का कार्य "तथ्यों से प्रारंभ होकर भावपरक एवं अनुभूतिजन्य सत्य तक जाता है। तथ्य उसके साधन है, जिनसे उसे सत्य साश्र्व प्राप्त करना होता है। भाव सत्य अरुपी, निरंतर विश्लेषण साश्र्व प्रसरणशील एवं देशकाल सापेक्ष होने के कारण पर्याप्त कठिनाई से ही प्राप्त एवं स्थापित किया जा सकता है। अतः साहित्यिक अनुसंधाता का दायित्व पर्याप्त जटिल, विराट एवं गंभीर है। उसे वस्तुपरक तथ्यों के साथ-साथ देश काल के अनुरूप परिवर्तित विकसित हुई मानव चेतना को भी साथ लेकर चलना है।" (अनुसंधान: स्वरूप और आयाम, पृष्ठ 58) इस प्रकार के अध्ययन की आवश्यकता इसलिए होती है कि सामाजिक घटनाओं की प्रकृति को समझा जाए, उसके अंतर्संबंधों को समझा जाए, तथा उसके अंतर्विरोधों को भी सामने लाया जाए। वस्तुत: समाजशास्त्रीय सिद्धांतों को वैज्ञानिक नियमों की तरह समझाना मुश्किल होता है। क्योंकि यह देश कालानुरूप निरंतर परिवर्तित होते जाते हैं। एक स्थापित सिद्धांत एक वर्ण-वर्ग के लिए अनुपयोगी हो जाता है। जैसे वैदिक संस्कृति के अधिकांश सामाजिक नियमों को उपनिषद काल ने और इन दोनों के लगभग सभी सामाजिक नियमों को आधुनिक काल ने नकारा, अस्वीकृत किया, उसका खंडन किया है। इसका सशक्त उदाहरण मानववादी, भक्तिवादी, आस्तिक, विषमता मूलक, परंपरा बनाम बौद्धिक, विज्ञानमूलक, वस्तुनिष्ठ समता मूलक परंपरा के संघर्ष में हमें दिखाई देता है। इसके पुरोधा- प्रवर्तकों में हमें दिखाई देता है। हिंदी साहित्य में इसी प्रकार का सामाजिक, बौद्धिक, वैचारिक क्रांति का संघर्ष हमें सगुण बनाम निर्गुण, भाववादी अज्ञान बनाम ज्ञान के रूप में दिखाई देता है। सामाजिक घटनाओं का अध्ययन ऐसी स्थिति में और भी आवश्यक हो जाता है। सामाजिक घटनाओं में ऊपरी तौर पर मोटा- मोटा भेद दिखाई देता है किंतु उसके अंतरंग में प्रचंड वैचारिक संघर्ष, टकराव की स्थितियां सुप्त रूप में क्रियान्वित रहती हैं। यही सामाजिक विकास के लिए उपयोगी होता है। ऐसी ही स्थितियों से मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति का विकास होता है। हुआ है। इस प्रकार की घटनाओं का अध्ययन समाज वैज्ञानिक तथा मानविकी अनुसंधान का विषय बन जाती है।

सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन करते समय अनुसंधाता को यह ध्यान में रखना चाहिए कि सामाजिक घटनाओं की प्रकृति और असामान्य होती है। इसलिए कई विद्वान इसके अध्ययन के लिए वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करने में असमर्थता जताते हैं। परंतु वर्तमान काल में इस प्रकार का अध्ययन किया जा सकता है यह स्पष्ट हो चुका है। इसके लिए सामाजिक प्रकृति को वर्ग- वर्ण, विशिष्ट परिस्थिति, काल सापेक्ष होकर उसका तटस्थ चिंतन मनन करने पर यह संभव होता है। डॉ.गणेश पांडे ने सामाजिक घटनाओं की कुछ विशेषताएं बताते हुए उसका वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है इसका प्रतिपादन किया है। पहले उसकी विशेषताओं को संक्षेप में देखते हैं।

१. सामाजिक घटनाएं जटिल होती हैं।

२. सामाजिक घटनाओं की प्रकृति अमूर्त होती है।

३. सामाजिक घटनाओं में वस्तुनिष्ठता नहीं पाई जाती है।

४. सामाजिक घटनाओं में समरूपता नहीं पाई जाती है।

५. सामाजिक घटनाओं के संबंध में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है।

६. सामाजिक घटनाओं में सार्वभौमिकता का अभाव पाया जाता है।

७. सामाजिक घटनाएं स्थिर नहीं होती हैं बल्कि गतिशील होती हैं।

८. सामाजिक घटनाएं गुणात्मक होती हैं गणनात्मक नहीं होती हैं।

इन विशेषताओं के आधार पर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि सामाजिक घटनाएं भौतिक एवं प्राकृतिक घटनाओं से भिन्न होती हैं ।साथ ही जितनी सुगमतापूर्वक भौतिक घटनाओं में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जा सकता है उतनी सुगमतापूर्वक सामाजिक घटनाओं में प्रयोग नहीं किया जा सकता है । लेकिन इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। इतना अवश्य है कि तुलनात्मक रूप में इसमें थोड़ी कठिनाई अवश्य है ।" (शोध प्रविधि, पृष्ठ 28, राधा पब्लिकेशन ,नई दिल्ली प्र.सं.2005) उनका यह भी कहना है कि सामाजिक घटनाओं का अध्ययन भी अवलोकन, परिक्षण, वर्गीकरण एवं विवेचन के आधार पर किया जा सकता है। सामाजिक घटनाओं का अध्ययन भी वैज्ञानिक पद्धति के चरणों के अनुरूप किया जा सकता है।....लुंडबर्ग आदि विद्वानों ने भी इस बात की पुष्टि की है कि विभिन्न सामाजिक घटनाओं आदि का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन किया जा सकता है। उनका कथन है कि प्रथाएं, परंपराएं एवं मानव व्यवहार आदि निरीक्षण योग्य तथ्य हैं, एवं इनका अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति द्वारा किया जा सकता है।" (वही पृष्ठ 29, 30) इसी प्रकार के अध्ययन से समाज में सामाजिक सुधार एवं गतिशीलता को प्राप्त किया जाता है। पिछली शताब्दी तथा उसके पूर्व भी भारत में इस प्रकार के अध्ययन धर्म, संस्कृति तथा चिंतन के क्षेत्र में हुए हैं। जिससे नया भारतीय समाज एवं सामाजिक व्यवस्था का आविष्कार हुआ है। जैसे उदाहरण के रूप में स्त्री को शिक्षा देनी चाहिए कि नहीं, स्त्री- पुरुष समानता, शिक्षा सार्वजनिक हो या नहीं, सरकारी हो या नहीं, या गैर सरकारी, शिक्षा सभी के लिए हो या विशिष्ट वर्ग -वर्ण के लिए, छुआछूत हो या नहीं, वर्ण व्यवस्था का अस्वीकार, विषमता का अस्वीकार, अज्ञान एवं अंधविश्वास का अस्वीकार, बहुदेववाद का अस्वीकार , जन्म की श्रेष्ठता का अस्वीकार, अंधभक्ति का अस्वीकार के साथ सामाजिक समता का स्वीकार, वैज्ञानिक दृष्टि का स्वीकार, वस्तुनिष्ठता का स्वीकार, व्यक्ति स्वतंत्रता का स्वीकार, भातृभाव के विकास का स्वीकार, मानवीय अधिकारों का संरक्षण का स्वीकार किया गया है। समाजशास्त्र अथवा समाज वैज्ञानिक अध्ययन की पद्धति वैज्ञानिक होती है और उसका अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति द्वारा किया जा सकता है । इसे भी डॉ. गणेश पांडे ने व्यक्त किया है। यह अध्ययन उनके अनुसार निम्न बिंदुओं के आधार पर संभव है।

१. वैज्ञानिक कार्य पद्धति का प्रयोग(use of scientific procedure)

२. अवलोकन (observation)

३. तथ्यों का विश्लेषण (Analysis of Data)

४. सामान्यीकरण (Generalisation)

५. क्या है? का अध्ययन (studies 'What is it')

६. कार्य -कारण संबंधों की व्याख्या (Explain course effect relations)

७. सिद्धांतों का निर्माण (constructs theory)

८. सिद्धांतों की जांच (Test theory)

९. सिद्धांत की सार्वभौमिकता (University of theory)

१०. भविष्यवाणी की क्षमता (capability to forecast)

उपरोक्त बिंदुओं से हमें यह पता चलता है कि समाजशास्त्र की प्रकृति वैज्ञानिक होती है। चूंकि इसमें वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति की ही तरह तथ्यों का संकलन, विश्लेषण, वर्गीकरण एवं सामान्यीकरण किया जाता है।" (वही पृष्ठ 30 और 33) समाज वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति के द्वारा ही साहित्यिक शोध को पूर्ण किया जा सकता है। व्यक्ति प्रधान चेतना की अभिव्यक्ति रसादि के द्वारा केवल उसका बहिरंग अध्ययन किया जाता है। भाववाद, भक्तिवाद और आस्थावादी चिंतन को इसमें कोई स्थान नहीं है। और अगर है भी तो उसका भी वैज्ञानिक अध्ययन कर उसके सामाजिक प्रभाव को स्पष्ट किया जा सकता है।

२.४.३ मानविकी अनुसंधान :-

मानविकी अनुसंधान में जीवन व्यवहार के वे सभी चिंतनपरक क्षेत्र आते हैं जिसमें संपूर्ण मानव तथा मानव समाज निहित रहता है। वैज्ञानिक अनुसंधान एवं साहित्यिक अनुसंधान की यत्किंचित मध्यवर्ती रेखा के रूप में मानविकी एवं शिक्षा शास्त्र से संबंधित शोध विषय आते हैं।" (अनुसंधान: स्वरूप और आयाम, पृष्ठ 58) “इसमें वस्तुतत्व एवं भावधारा का योग रहता है। प्रधानतया ये विषयवस्तु घटना एवं समस्यामूलक चिंतन से संबंधित हैं। विचारप्रधान शोध कार्य के अंतर्गत चिंतनप्रधान, संभावनाप्रधान, घटनाप्रधान एवं विश्लेषणात्मक मानविकी इतिहास, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र, घटनाप्रधान, मनोविज्ञान एवं शिक्षा शास्त्र से संबंधित सभी विषयों पर कार्य किया जाता है। इसमें मानव के विवेकपूर्ण एवं तलस्पर्शिनी प्रतिभा एवं मेधा का समाज, राष्ट्र एवं विश्व के मनन चिंतन एवं आचरण की दिशा में नए द्वारों के उद्घाटनार्थ प्रयोग किया जाता है। इसमें मुख्यतः चिंतन और निष्कर्षों की होती है परंतु इसका आधार मुख्यतः प्रकृति की गतिविधि, स्वानुभव, परानुभव एवं सामाजिक नैतिक मूल्य होते हैं। यह चिंतन या विचार प्रधान शोध कोरा ऊहात्मक चिंतन या बुद्धिविन्यास नहीं है। इसमें चिंतन एवं विचार की वास्तविकता का पूरा ध्यान एवं प्रमाणीकरण अपेक्षित होता है। (वही पृष्ठ 59) धरती पर असंख्य महात्माओं ने विचार तत्व के रूप में मानविकी के अनुसंधान पर विशेषतः बल दिया है। भारत में बुद्ध, कबीर, गांधी, डॉ.आंबेडकर, महात्मा फुले आदि यूरोप में सुकरात, प्लेटो, अरस्तु आदि।

मानविकी अनुसंधान के संबंध में डॉ.विनय मोहन शर्मा ने कहा है कि शुद्ध विज्ञान में जब नियम या निष्कर्ष सर्वकालिक एवं सर्वपारिस्थिक नहीं रह जाते तब साहित्य, शिक्षा, समाज, विज्ञान आदि मनाविक विषयों में निष्कर्ष जहां मानव चिंतन युगानुरूप तथ्यों को व्याख्यायित करता है, कैसे अकाट्य या शाश्वत हो सकते हैं?... साहित्य के निष्कर्ष युगानुरूप निष्कर्ष व्याख्यानुसार परिवर्तित होते रहते हैं। ज्ञान नव -नव अनुभवों के कारण विस्तृत या व्याख्यायित होता जाता है।" (शोध प्रविधि, पृष्ठ 10 -11) यह बात कबीर, तुलसी, केशव के अध्ययनों से पता चलती है। आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल और उनके सरीखे आलोचकों ने उनके संबंध में जो धारणाएं गढ़ी थी, आलोचना के जरिए वह

अनुसंधान के कारण गलत साबित होती गई है। शुक्ल ने कबीर को अशिक्षित, तुलसी को समन्वयवादी और केशव को अकवि घोषित किया था। किंतु परवर्तिकाल में इन सभी धारणाओं का खंडन होता रहा है। कबीर की शिक्षा का प्रभाव एवं परिणाम सभ्य संस्कृत वर्गों पर नहीं हुआ या उनका मन बिल्कुल सही है किंतु वे अशिक्षित भले ही हो कई उच्च शिक्षितों के आगे की सोच कबीर रखते हैं। वह केवल खंडन ही नहीं नव समाज- विचार का मंडन भी करते हैं।

मानविकी जिसे कुछ लेखक विचार प्रधान चिंतन या सिद्धांतप्रधान शोध अध्ययन कहते उसे पांच शाखाओं में विभाजित किया गया है-

१. वस्तुपरक पर आधारित चिंतन

२. शुद्ध विचार पर या सिद्धांत पर आधारित चिंतन

३. आध्यात्मिक दार्शनिक मीमांसा

४. मनोविज्ञानपरक चिंतन विश्लेषण

५. जिजीविषा एवं कल्पनात्मक चिंतन (अनुसंधान: स्वरूप और आयाम,पृ.-60)

मानविकी अध्ययन में कोई भी विषय मानव, समाज, दर्शन, अर्थ, धर्म, संस्कृति,समाज से जुड़ा हुआ है। आज साहित्यिक शोध में इसे अंतर विद्यावर्ती अध्ययन के रूप में देखा जा रहा है।

वस्तुत: साहित्यिक शोध भाव एवं शैली पक्ष के रूप में केवल उसकी शास्त्रीय क्रियाओं की अभिव्यक्ति के रूप में देखा नहीं जा रहा है बल्कि मानवीय सभ्यता चिंतन के विकास के रूप परखा जा रहा है। मानविकी का दायरा कई गुणा अन्य शोधों से विस्तृत, गंभीर एवं गहरा है।

२.५ सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित विषयों से अवगत हुए है -

१. अनुसंधान के मूल तत्वों की परिपूर्ण जानकारी हासिल की।

२. अनुसंधान के विविध रूपों से परिचय हुआ।

३. अनुसंधान की मूलभूत संरचना से अवगत हुए।

२.६ लघुत्तरी प्रश्न

१. शोध के स्वरूप तथा उसकी प्रविधि प्रक्रिया के संबंध में विनय मोहन शर्मा का मत लिखिए|

२. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने मनुष्य के बाह्य तथा अंतर- विकास की कड़ियों का अनुसंधान के कितने व कौनसे प्रकार बताएं है ?

३. ज्ञान क्षेत्र की सीमाओं का विस्तार के साधन कौनसे है ?

४. मानविकी अनुसंधान में जीवन व्यवहार के कौनसे क्षेत्र आते है ?

५. समाज वैज्ञानिक अध्ययन में किस मुद्दे पर विचार करना जरूरी है?

२.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. अनुसंधान के मूल तत्वों का वर्णन कीजिए |

२. अनुसंधान के विविध रूपों को विशद कीजिए |

३. अनुसंधान की मूलभूत संरचना को समझाइए |

२.८ संदर्भ ग्रन्थ

१. शोध प्रविधि - विनय मोहन शर्मा राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली

२. शोध: स्वरूप एवं मानक व्यवहारिक कार्यविधि - ले. बैजनाथ सिंहल, वाणी प्रकाशन, नवीन शोध विज्ञान

३. अनुसंधान: स्वरूप और आयाम,- सं. डॉ उमाकांत गुप्त डॉ.बृजरतन जोशी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली

✞✞✞✞

३

अनुसन्धान के प्रकार

इकाई की रूपरेखा :

३.१ उद्देश्य

३.२ प्रस्तावना

३.३ विषय विवेचन

३.३.१ अनुसन्धान के प्रकार

३.३.१.१ वर्णनात्मक

३.३.१.२ एतिहासिक

३.३.१.३ तुलनात्मक

३.३.१.४ लोकतात्विक

३.३.१.५ भाषाकेन्द्रित

३.३.१.६ अनुशासनिक

३.३.१.७ गुणात्मक एवं परिणामात्मक

३.४ सारांश

३.५ लघुत्तरी प्रश्न

३.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

३.७ संदर्भ ग्रन्थ

३.१ उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आपको निम्नलिखित विषयों की जानकारी प्राप्त होगी |

१. अनुसन्धान के विविध प्रकारों को आप समझेंगे |

२. अनुसन्धान के विविध प्रकारों के परस्पर सम्बन्धों से अवगत होंगे |

३.२ प्रस्तावना

भाषा तथा साहित्य अनुसंधान में विविध प्रकारों का अपना-अपना विशिष्ट महत्व एवं उपयोग होता है | इन प्रकारों के द्वारा शोध कार्य में गहनता तथा गंभीरता के साथ-साथ प्रामाणिकता एवं वैज्ञानिक, वस्तुनिष्ठता आती है | विषय विवेचन-विश्लेषण के लिए योग्य प्रकार का उपयोग करने, करते हुए अनुसंधान कार्य को आगे बढ़ाया जाना संभव होगा | इस समय

साहित्य एवं भाषा अनुसंधान में अंतर्विद्यावर्ती शोध का महत्व बढ़ रहा है | इस प्रकार का शोध एक केंद्रित न होकर बहु केंद्रित होता है | तथा विषय को अलग-अलग दृष्टिकोण से विवेचित विश्लेषित करने में सहयोग मिलता है|

३.३ विषय विवेचन

अधिकांश शोधार्थी अनुसंधान एवं आलोचना के मौलिक कार्य तथा अंतर को समझते नहीं है| अनुसंधान वैज्ञानिक प्रविधि नए ज्ञान की खोज, ज्ञान का विस्तार तथ्यात्मक रूप से करता है | उसकी प्रक्रिया विज्ञान जैसी प्रयोगात्मक होती है | उसकी तर्कशीलता में ही वस्तुनिष्ठता निहित है |आलोचना व्यक्ति के संस्कारों, विचारों से प्रभावित प्रतिक्रिया मानी जाती है | अनुसंधान में आलोचना का प्रयोग होता है किंतु आलोचना में वहनहीं होता है |

अनुसंधान कार्य में अनुसंधाता एवं शोध निर्देशक दोनों का परस्पर योग होता है | दोनों के गुणों से ही अनुसंधान प्रभावित होता है | अनुसंधान कार्य में शोध निर्देशक एक तरह का स्रोत है तो अनुसंधाता उसका क्रियात्मक प्रयोग कर्ता जिससे वैज्ञानिक तकनीकि निष्कर्षों में ज्ञान की प्रस्थापना, नई व्याख्या आदि होती रहती है |

३.३.१ अनुसंधान के प्रकार :-

ज्ञान के जो विविध क्षेत्र है वही अनुसंधान के भी विविध क्षेत्र हैं | मनुष्य ने अनेकानेक प्रकार से ज्ञान का संग्रह सदियों से तथा अनवरत प्रक्रिया में किया है | जीवन विषयक जिज्ञासाओं ने उसे अनुसंधित्सू बना दिया है | मनुष्य की अदम्य जिज्ञासा ने उसके अनुभव क्षेत्र को अधिकाधिक विस्तृत बना दिया है | यही अनुभव क्षेत्र, ज्ञान संग शोध क्षेत्र अथवा प्रकार हैं| तिलक संत के अनुसार ज्ञान - विज्ञान को तीन भागों में बांटा जाता है-१. काव्य रूप, २. शास्त्र रूप, ३ पुराण या इतिहास रूप | इन विभिन्न प्रकारों का वर्गीकरण विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि से करते हुए उसे मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया है –

१. उद्देश्य की दृष्टि से,

२. कला की दृष्टि से,

३. प्रयोग की दृष्टि से

1. उद्देश्य की दृष्टि से:-इसे सामान्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है | डॉक्टर विनय मोहन शर्मा के अनुसार – "एक प्रकार वह है जिसका उद्देश्य केवल वैज्ञानिक पद्धति से अनुमानित परिकल्पना के आधार पर किसी तथ्य या सिद्धांत का शोधन किया जाता है|"[१] (पृ. ११)इसे शुद्ध शोध (pure Research)कहते हैं |अधिकांश वैज्ञानिक शोध इसकी परिधि में आते हैं | पदार्थ, ऊर्जा, प्रकाश, गति विषयक नियम आदि से सम्बन्धी शोध क्रमशः आइंस्टाईन, न्यूटन आदि ने किए |

दूसरा प्रकार है - शुद्ध शोध के परिणाम को व्यवहारिक बनाने की दिशा में प्रयत्न करना होता है | इसे व्यावहारिक या कार्यशील शोध (Practical or Action Research) कहते हैं | आइंस्टाईन के शुद्ध शोध के आधार पर आधार बनाकर एटम बम बनाने का जो शोध कार्य किया गया वह व्यावहारिक या कार्यशीलशोधके अंतर्गत आता है|"(वही पृ.११) पहले में

सिद्धांत को गढ़ा जाता है तो दूसरे में इसका व्यावहारिक क्रियान्वयन किया जाता है | इसीलिए एक को शुद्ध और दूसरे को व्यवहारिक शोध कहा जाता है |

2.कला की दृष्टि से:-कला संबंधी शोध के कई प्रकार हो सकते हैं | सामान्यतः किसी कलाकृति में सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक रूपों का कलात्मक शोधन किया जाता है | उन्हें कला संबंधी शोध कहा जाता है | वस्तुतः तथ्याख्यान संबंधी अनुसंधान कलात्मक कहा जाता है|"(गुप्त पृ -७४) इसमें रचना संबंधी नवीन दृष्टिकोण से व्याख्या करना और विविध रचनाओं का प्रभाव संबंधी प्रवृत्ति जन्य तत्वों का अनुसंधान करना शामिल है | इसके भी डॉक्टर शर्मा ने तीन प्रकार बतलाए हैं-१. ऐतिहासिक शोध, २. वर्णनात्मक या व्याख्यात्मक शोध, ३. सर्वेक्षणात्मक या सर्वे – शोध|

i . ऐतिहासिक शोध:- मानव की सभ्यता एवं संस्कृति, ज्ञान - विज्ञान संबंधी, भाषा धर्म तथा दर्शन संबंधी, चिंतन संबंधी, भूत वर्तमान तथा भविष्य संबंधी दिशा निर्देशन करने वाले होते हैं | इसकी प्रक्रिया भूतकाल को समझने वर्तमान में प्रयोग करने तथा भविष्य में नया दृष्टिकोण विकसित करने के लिए होती है | अतीत का संबंध कुछ मात्रा में वर्तमान से होता है | यह सकारात्मक एवं नकारात्मक इन दोनों रूपों में होता है | मानवीय जीवन के विविध अंगों में यह परिव्याप्त होता है |

ii. वर्णनात्मक या व्याख्यात्मक:- मानव जीवन की लगभग सभी समस्याओं को इसके अंतर्गत रखा जाता है | साहित्य, समाज तथा शुद्ध विज्ञान का अनुसंधान मूलतः वर्णनात्मक अनुसंधान है | इसी का यह व्याख्यान है, व्याख्यात्मक अनुसंधान है |साहित्य एवं कला की दृष्टि से इसका महत्व अनुसंधान के क्षेत्र में सर्वाधिक है | यहाँ केवल तथ्यों का संकलन ही नहीं होता बल्कि उसकी नई व्याख्या भी होती है | सामाजिक, मनोसामाजिक, विज्ञानियों ने इस प्रकार का अनुसंधान सर्वाधिक किया है | वस्तुतः साहित्य भी वर्णन प्रधान ही होता है | यह आत्मरंजित या अतिरंजित भी हो सकता हैअथवा कल्पनात्मक, विचारात्मक तथा शैलीपरक भी होता है |

iii. सर्वेक्षणात्मक अथवा सर्व-शोध:- इसका संबंध संख्यात्मक प्रणाली एवं मानवीय व्यवहारात्मक प्रवृत्ति के रूप में रहता है इसके अंतर्गत शैक्षणिक, समाजशास्त्रीय, अर्थशास्त्रीय, भाषा शास्त्रीय, भौगोलिक आदि सर्वेक्षणात्मक कार्यों को रखा जाता है | समाज संबंधी तथ्यों का निरीक्षण - परीक्षण एवं उसका निष्कर्षणात्मक अनुसंधान इसमें मौजूद रहता है |

३. प्रयोग की दृष्टि से :- प्रयोग विज्ञान की प्रणाली है | यह अत्यंत प्राचीन है |आयुर्वेदिक औषधि का प्रयोग, योगात्मक आचार एवं विचार का प्रयोग अनादिकाल से मनुष्य करता आया है | मानसिक प्रयोगशीलता भी इसमें शामिल होती है | यह जितनी विज्ञान में प्रयुक्त होती है उतनी मानवीय जीवन तथा वर्तन में प्रयुक्त एवं अध्ययन, विवेचन, विश्लेषण के लिए उपयोगी होती है | शिक्षा के क्षेत्र में भी छात्रों की बौद्धिक क्षमताओं का विवेचन एवं आकलन करने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है | प्रयोगशीलता की प्राचीनता एवं जटिलता दोनों के अंतर्गत सुव्यवस्थित एवं नियंत्रित प्रयोगशालाओं का विकास किया गया | जैसे चिकित्सा के क्षेत्र में औषधि का उपयोग प्राणियों पर प्रयोग कर सुनिश्चित किया जाता है | वैसे ही साहित्य में उसकी मानसिक क्रिया - प्रतिक्रियाओं के आधार पर देखा परखा और

समझा जाता है | विज्ञान तो प्रयोगात्मक है किंतु समाज एवं साहित्य भी प्रकारंतर से प्रयोगात्मक विचार, रूढी, परंपराओं का संजाल बनते हुए अपने-अपने धर्म, समाज, वर्ण का नियंत्रण करता है | इसलिए समाज विज्ञान की प्रयोगशाला समाज एवं जन सामान्य में अभिव्यक्त मनोविज्ञान के संदर्भ में देखी जा सकती है|अनुसंधान का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है | शोध विषय स्वरूप मांग एवं क्षेत्र के अनुसार सत्य की खोज, तथ्यों का अन्वेषण और निष्कर्षों की स्थापना के लिए अलग-अलग पद्धतियों का प्रयोग शोधार्थी करता है | जो निम्नलिखित है-

३.३.१.१. वर्णनात्मक एवं व्याख्यात्मक पद्धति:- अंग्रेजी में जिसे (Narative Method) कहा जाता है उसका हिंदीप्रयोग वर्णनात्मक रूप में किया जाता हैं | वर्णन का अर्थ प्रायः Description के अर्थ में होता है | सामान्यतः वर्णन शब्द का अर्थ शास्त्रीय या सैद्धांतिक विवेचन है | साहित्यिक शोध में सर्वाधिक एवं उपयुक्त शोध पद्धति, वर्णनात्मक पद्धति ही है जिसका प्रयोग किसी भी विषय को शास्त्रीय दृष्टि से विवेचित करने के लिए किया जाता है | शोधार्थी को विषय का प्रतिपादन करने हेतु यही पद्धति उपयोगी होती है | इसलिए इसका आश्रय लेकर तथ्यों का निरूपण, चरित्र का विश्लेषण, विचार तथा मनोविचार का प्रतिपादन इसी पद्धति के जरिए किया जाता है | यह पद्धति शोध के सूत्रों से लेकर निष्कर्षों के प्रतिपादन तक उपयोगी होती है | वैसे देखा जाए तो आज तक विश्व भर में उपलब्ध साहित्य अधिकांश रूप में वर्णनात्मक शैली में ही लिखा गया है|इसी पद्धति के द्वारा शोधार्थी तथ्याख्यान संबंधी कलात्मक अनुसंधान करता है | दूसरे अर्थ में अनुसंधान में नवीन व्याख्याओं या विशिष्ट व्याख्या द्वारा रचना में निहित प्रवृत्ति जन्य तत्वों का प्रतिपादन करता है | डॉक्टर मनमोहन सहगल ने वर्णनात्मक शोध की कला की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण माना है “क्योंकि इसके माध्यम से शोधार्थी अपने चिंतन मनन को नवीन व्याख्याओं द्वारा न केवल अभिव्यक्ति देता है, बल्कि धारा विशेष के संबंध में विश्लेषण - संश्लेषण और निर्णय भी प्रस्तुत करता है|”(अनुसंधान: स्वरूप और आयाम,पृ-७४) इसलिए “व्याख्यात्मक या वर्णनात्मक शोध में मानव जीवन की सभी वर्तमान समस्याओं पर चाहे वह साहित्य, समाज, विज्ञान या शुद्ध विज्ञान से संबंध रखती हो, अनुसंधान किया जाता है | वर्णनात्मक शोध में तथ्यों का संकलन मात्र न होकर उनकी व्याख्या होती है और मूल्यांकन होता है|” (शोध प्राविधि डॉ. विनय मोहन शर्मा पृ -११) इसका तात्पर्य यह है कि वर्णनात्मक शोध में वर्ण्य विषय काशास्त्रीय दृष्टि से व्यापक एवं विस्तृत विवेचन किया जाता है | इसी पद्धति के कारण रचना में लेखक और अनुसंधान में शोधार्थी कल्पना की सहायता से अपनी अपनी भाव प्रतिक्रियाओं का अंकन करते हैं | शोध प्रबंध का लेखन नितांत तटस्थ एवं व्यक्ति निरपेक्ष दृष्टि से किया जाता है | इसमें शोध-कर्ता ‘मैं’ तथा ‘हम’ जैसे सर्वनाम का प्रयोग न कर अन्य पुरुष रूप में करता है | अतः अन्य पुरुष की कथन शैली वर्णनात्मक पद्धति के लिए अधिक पूरक तथा उपयुक्त सिद्ध होती है |“साथ ही इस पद्धति के अंतर्गत भाषा की रचना प्रक्रिया को समकालिक, विश्लेषणात्मक विवेचन किया जाता है | बोधगम्यता, सरलता, स्पष्ट, हृदयगमता, विवरणात्मकता आदि इसकी प्रमुख विशेषताएं हैं|” वर्णनात्मक पद्धति के तीन प्रकार होते हैं |

१. काव्य शास्त्रीय,

२. व्याख्यात्मक,

३.मूल्यांकनात्मक

१. काव्य शास्त्रीय पद्धति में काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों की व्याख्या, विवेचन वर्णनात्मक पद्धति द्वारा किया जाता है | यह दो प्रकार का होता है (क) भारतीय काव्यशास्त्र,(ख) पाश्चात्य काव्यशास्त्र।
२. व्याख्यात्मक पद्धति में किसी साहित्य कृति की समाजशास्त्रीय, दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक व्याख्या की जाती है | साहित्य का इन तीनों से घनिष्ठ संबंध होता है | कोई साहित्य कृति किसी दर्शनिकता का प्रतिपादन करती है| साहित्य कृति को लेखकीय जीवन दर्शन का प्रतिनिधि कहा जाता है जैसे कबीर का काव्य, प्रेमचंद का गोदान, प्रसाद की कामायनी आदि |
३. मूल्यांकन पद्धति के अंतर्गत शोधार्थी किसी रचना के रचनात्मक या उसकी विचारात्मक मूल्यों का विवेचन करना हैएक तरह से यह कृति विशेष का मूल्यांकन होता है | उसके मूल्यों के आधार पर उसके निष्कर्षों का प्रतिपादन किया जाता है | यह दार्शनिक, काव्य शास्त्रीय, प्रवर्तिगत, विचारधारात्मक, शैलीगत रूपों में विवेचित होते हैं|अज्ञेय के साहित्य में अस्तित्ववाद का मूल्यांकन अथवा जैनेंद्र के साहित्य में मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन जैसे विषय देखे जा सकते हैं |

३.३.१.२. ऐतिहासिक पद्धति:- ऐतिहासिक एवं पौराणिक अनुसंधान कार्य के लिए इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है | ज्ञान के प्रत्येक विषय का कालक्रम से अध्ययन, तात्विक विवेचन- विश्लेषण, ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति कही जाती है | प्राकृतिक विज्ञान और मानव विज्ञान के विषयों का अध्ययन इसके अंतर्गत आता है | समाज में भाषा और साहित्य विकास के सोपानों का क्रमिक तात्विक विवेचन करते हुए उसके तथ्यों – सत्यों का प्रतिपादन इसके अंतर्गत किया जाता है | डॉक्टर तिलक सिंह ने कहा है कि साहित्य युग सापेक्ष जीवन मूल्यों की भावमयी अभिव्यक्ति है| जीवन और जगत का विकास साहित्य का विकास है |"(नवीन शोध विज्ञान पृ-५६)

भाषा तथा साहित्य के क्रमिक विकास का अध्ययन ऐतिहासिक शोध के जरिए प्रस्तुत किया जाता है |"मनुष्य का कार्य - व्यापार इतिहास से जुड़ा होता है | ऐतिहासिक तथ्यों का संबंध किसी घटना, किसी देश,समाज तथा देश और समाज की सांस्कृतिक और राजनीतिक स्थितियाँ लेखक अथवा आश्रयदाता- संरक्षक के जीवन अथवा किसी भावात्मक और विचारात्मक परंपरा के विकास से होता है | प्रत्येक विषय वस्तु का अपना इतिहास होता है।(पूर्ववत पृ-४५)इसलिए ऐतिहासिक दृष्टि से इसका अध्ययन करना शोधार्थी के लिए आवश्यक होता है | ऐतिहासिक पद्धति अनुसंधान के अर्थ में इतिहास दर्शन है |"(पूर्ववत पृ-४५) डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने ऐतिहासिक, दार्शनिक, सामाजिक परंपराओं का दिग्दर्शन इसी पद्धति के आधार पर करते हुए आचार्य शुक्ल की इतिहास एवं साहित्य प्रवृत्तियों का नया अनुसंधान किया और हिंदी भाषा तथा साहित्य से संबंधित विकास प्रवृत्तियों का नया तथ्याख्यान कियाहै। एक तरह से इतिहास पर जमी काई को साफ किया है | यह प्रवृत्ति हमें भाषा विकास संबंधी अध्ययन में दिखाई देती है | अब तक भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा विकास संबंधी जो परंपरा डाली है | जिसके अनुसार वैदिक भाषा- संस्कृत– प्राकृत- अपभ्रंश से क्रमशः हिंदी भाषा का विकास प्रतिपादन किया है | यह नितांत

भ्रम पूर्ण है | वस्तुतः भाषा के मूलतः दो प्रकार होते हैं एक प्राकृत अर्थात प्राकृतिक स्वयंभू रूप में विकसित और दूसरा होता है संस्कारिक अर्थात संस्कृत है | डॉक्टर जगदीश चंद्र जैन ने "प्राकृत साहित्य के इतिहास पुस्तक में लिखा है कि "पहले कतिपय विद्वानों का मत था कि प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है और प्राकृत संस्कृत का ही बिगड़ा हुआ (अपभ्रंश) रूप हैलेकिन अब यह मान्यता असत्य सिद्ध हो चुकी है | पहले कहा जा चुका है, आर्य भाषा का प्राचीनतम रूप हमें ऋग्वेद की रचनाओं में मिलता है | दुर्भाग्य से आर्यों की बोलचाल का ठेठ रूप जानने के लिए हमारे पास कोई साधन नहीं है लेकिन वैदिक आर्यों की यही सामान्य बोलचाल जो ऋग्वेद की संहिताओं की साहित्यिक भाषा से जुड़ा है, प्राकृत का मूल रूप है|"(पृ.५चौजम्बा विद्याभवन वाराणसी सं१९६१) "पाणिनि ने(५००ई. पू.) ने वैदिक कालीन भाषा को व्याकरण के नियमों में बांधकर सुसंस्कृत बनाया और प्राकृत का यह परिष्कृत, सुसज्जित और सुगठित रूप संस्कृत कहा जाने लगा|"(वही पृ.६) "स्वयं पाणिनि ने वाड़मय की भाषा को और साधारण जनों की भाषा की भाषागत कहकर उल्लेखित किया है | संस्कृत भारतीय आर्य भाषाओं की कितनी ही बोलियों द्वारा समृद्ध हुई...... उधर लोग भाषा का अनुदित अक्षय प्रवाह शताब्दियों से चला आ रहा था जिसके विविध रूप भिन्न-भिन्न क्षेत्र और काल के जन साहित्य में दृष्टिगोचर होते हैं| महावीर और बुद्ध ने इसी लोक भाषा को अपनाया और इसमें अपना उपदेशामृत सुना कर जनकल्याण किया | वस्तुतः मध्य युगीन भारतीय आर्य भाषाओं का यह युग अत्यंत समृद्ध कहलाया | इस युग में सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्र में जितनी उन्नति हुई उतनी प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं के काल में कभी नहीं हुई | जन भाषा में लोक जन-जीवन का बहुमुखी चित्रण किया जाने लगा|"(वही पृ -८) वस्तुत:कलिकाल सर्वज्ञ के नाम से प्रख्यात आचार्य हेमचंद्र के मतानुयायी विद्वानों की मान्यता है कि प्राकृत, संस्कृत का ही अपभ्रंश रूप है | लेकिन रुद्रट के काव्यालन्कार (२१२) के टीकाकार नमिसाधु ने इस संबंध में स्पष्ट लिखा है-"व्याकरण आदि के संस्कारों से विहीन समस्त जगत के प्राणियों के स्वाभाविक वचन व्यापार को प्रकृति कहते हैं; इसी से प्राकृत बना है | बालक, महिलाओं आदि की यह भाषा सरलता से समझ में आ सकती है और समस्त भाषाओं की यह मूलभूत है | जबकि मेघ धारा के समान एकरूप और देशविशेष या संस्कार के कारण जिसनेविशेषता प्राप्त की है और जिसे सत - संस्कृत आदि उत्तर विभेद है उसे संस्कृत समझना चाहिए|" (वाक भूमिका सेउद्धृत) भाषा विकास का यह ऐतिहासिक अध्ययन परवर्ती सभी विद्वानों ने दुर्लक्षित करते हुए हेमचंद्र अनुयायियों का अनुकरण किया है | डॉ.तिलक सिंह कहते हैं –"भाषा तथा साहित्य के क्षेत्र में पहले वैदिक संस्कृत, संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश की कालक्रमिक स्थिति, इनका पारस्परिक संबंध उनकी संरचना पद्धति आदि स्पष्ट हो जाएं तो हिंदी साहित्य तथा भाषा के विकास की अनेक संयुक्त कड़ियां संयुक्त हो जाएं तो हिंदी साहित्य तथा भाषा के विकास की अनेक असंयुक्त कड़ियाँ संयुक्त हो जाए तथा इनके विकासों के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रांत धारणाओं का खंडन हो जाए यह सब ऐतिहासिक शोध कार्यों द्वारा संभव हो सकता है |"(नवीन शोध विज्ञान,पृ-५७)

इसके संबंध में कहा जा सकता है कि किसी एक साहित्यिक कृति अथवा एकाधिक साहित्यिक कृतियों का काल के विभिन्न बिंदुओं पर मूल्यांकन करना ऐतिहासिक शोध है| प्रत्येकयुग का साहित्य एक दीर्घकालिक विकास परंपरा का परिणाम है | भारतीय साहित्य के विकास के विभिन्न सोपान है- वैदिक साहित्य, संस्कृत साहित्य, प्राकृत साहित्य,

अपभ्रंश साहित्य तथा हिंदी साहित्य,साहित्य के विकास सुदीर्घ परंपरा के विभिन्न कालबिंदु है | यह विकास कितना प्रमाणिक तथा न्याय संगत है ? ऐतिहासिक शोध द्वारा ही सिद्ध किया जा सकता है|"(वही पृ-५७)

साहित्य संस्कृति के दो प्रकार होते हैं १.शिष्ट साहित्य संस्कृति, २. लोक साहित्य संस्कृति | इन्हीं से सांस्कृतिक मूल्यों की निर्मिती होती है | हिंदी साहित्य की सांस्कृतिक प्रभावशीलता इसके पूर्व विकसित भारतीय साहित्य की संस्कृति में दिखाई देती है| जिसके विकास क्रमानुसार इसे देखा जा सकता है | जिसके चार आयाम हैं |१. वैदिक साहित्य, २. संस्कृत साहित्य, ३. प्राकृत साहित्य, ४.अपभ्रंश साहित्य उपरोक्त संस्कृति साहित्य से संस्कृति से पूर्णतया समरूप नहीं है | संस्कृतियां काल बिंदु की दृष्टि से समान होते हुए भी संरचना एवं गुणवत्ता की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न होती हैं | साहित्य के संस्कृतिक शोध कार्यों द्वारा एक ही संस्कृति के समान बिंदुओं के विभिन्न कालों के साहित्यों में रूपांतरण को स्पष्ट किया जा सकता है | एक संस्कृति को प्रमाणित करने वाली, दूसरी संस्कृति के तत्वों को भी अलगाया जा सकता है |

वैदिक काल की संस्कृति यज्ञ प्रधान थी | संस्कृत साहित्य की संस्कृति कर्मकांड प्रधान हो गई | बौद्ध संस्कृति आडंबर शून्य कर्म प्रधान हुई | जैन संस्कृति आचरण की अति पवित्रता पर बल देने लगी इस प्रकार प्रत्येक संस्कृति ने एक दूसरे से प्रेरणा लेकर स्वतंत्र रचना तत्वों का निर्माण किया | अपनी अस्मिता को परंपरा से विछिन्न किया | एक ही देश के साहित्य की संस्कृति एकाधिक रूपों में मिलती है| साहित्य के सांस्कृतिकशोध कार्यों द्वारा इन सांस्कृतिक समरूप सूत्रों तथा टकराहटजन्य विभिन्न सांस्कृतिक सूत्रों को अलगाया जा सकता है | यही नहीं सांस्कृतिक संक्रमण काल - बिंदुओं को भी निर्धारित किया जा सकता है |"(वही पृ-७५,७६) इति से शाश्वत एवं कृत्रिम संस्कृतियों का विकास होता है | कुछ विद्वान इस प्रकार के अध्ययन को अंतर्विद्यार्थी अध्ययन में भी रख कर देखते हैं | किंतु साहित्य, समाज, संस्कृति एक दूसरे से जुदा नहीं है | एक साथ यह विकसित होती हैं | इसलिए इसका अनुसंधान कार्य भी एक शोध विषय के अंतर्गत किया जा सकता है अथवा स्वतंत्र रूप से भी भारत में सामाजिक आंदोलनों की विभिन्नता उसके सांस्कृतिक आंदोलन में विद्यमान है |

३.३.१.३.तुलनात्मक पद्धति:- तुलना करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है | यह किसी, वस्तु, विचार, दर्शन, समाज, संस्कृति में भी इस स्वाभाविक रूप में उभरती है | साहित्य के जितने भी प्रकार हैं उन सभी में तुलनात्मक अध्ययन संभव है | यह प्रवृत्तिगत तुलना है या सकती है या प्रभावगत तुलना या भाषायी तुलना | अन्य भाषा भाषिक व्यक्तियों द्वारा एक ही भाषा के शोधार्थी द्वारा तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है | हिंदी में यह अन्य भाषा भाषी शोधार्थियों द्वारा अधिक विकसित हुई | डॉ मनमोहन सहगल ने तुलना के दसआधार बताएं हैं - (पृ-१०५,१०७)

१. दो भाषाएं- एक विधा|
२. एक ही भाषाओं में दो विधाओं अथवा प्रवृत्तियों का अध्ययन
३. एक ही भाषा साहित्य में दो कालों की तुलना
४. एक ही भाषा साहित्य में दो लेखक या दो कृतियों की तुलना

५. दो भाषाओं के साहित्य में एक काव्य विशेष
६. दो भाषाओं के दो अलग-अलग लेखक
७. दो भाषाओं के एक ही विधा पर लिखने वाले दो लेखक
८. दो भाषाओं की एक साहित्य प्रणाली
९. दो भाषाओं के काव्यशास्त्र की तुलना
१०. दो भाषाओं का भाषा वैज्ञानिक अथवा व्याकरण संबंधी किसी अंग का तुलनात्मक अध्ययन(अनुसंधान:स्वरूप और आयामपृ- १०५-१०७)

सामान्यतः तुलना का आधार व्यक्ति, व्यक्तित्व, चिंतन - मनन, विचार, भाषा, शैली, दृष्टिकोण आदि स्थल एवं सूक्ष्म रूपों में विद्यमान होता है | यह वैचारिक एवं अभिव्यक्गितगत होता है | यही कारण है कि दो रचनाकारों की दृष्टि एक जैसी नहीं होती है | उसका परिवेश कालबोध, संस्कार, भाषा भिन्न होती है | ऐसे में कुछ समान तत्व या असमान तत्वों की खोज करते हुए अनुसंधान का कार्य संपन्न किया जा सकता है | जैसे मराठी संत तुकाराम और हिंदी संत कबीर का तुलनात्मक अध्ययन सामान्य के कई आयाम को हमारे सामने लाता है | जबकि दोनों की प्रदेश, भाषा, संस्कृति अलग-अलग है | परंतु विचार एक हैं| तुलनात्मक अध्ययन एक साथ व्यवहारिक और सैद्धांतिक हो जाता है | इस प्रकार किन्हीं दो कृतियों, कवियों, आलोचकों इत्यादि का तात्विक आधार पर अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है | यह प्रक्रिया "विषमता बतलाने के लिए साम्य की खोज और साम्य बतलाने के लिए विषमता का शोध लेती है |"(शोधस्वरूप मानककार्यविधिपृ.३०)

इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन कृतियों के तत्वों का युगपद (साइमल्टेनियस) अध्ययन होता है | भारतीय दृष्टि के विशिष्टपरक होने के कारण हमारे यहां तुलनात्मक अध्ययन बहुत कम हुआ है |"(वही पृ -३०)

तुलनात्मक शोध की प्रक्रिया में तुलनीय ग्रन्थों के सभी तत्वों को अलग-अलग करना होता है | कथावस्तु, पात्र, दर्शन, धर्म और मनोविज्ञान आदि तत्वों को लेकर साम्य - वैषम्य की तुलना करनी चाहिए | एक ग्रंथ से दूसरे ग्रंथ के अध्ययन के द्वारा आद्योपांत निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाने चाहिए।(वही पृ-३०) जैसे आचार्य रजनीश ने भावनिकी और धम्मपद का धम्मपद तुलनात्मक विचार प्रस्तुत किया है | "इस प्रकार का अध्ययन किसी विशिष्ट पहलू या क्षेत्र विशेष को लेकर भी किया जाता है | धर्म दर्शन, मनोविज्ञान, सौंदर्य शास्त्र, संस्कृति इत्यादि क्षेत्रों में से किसी एक के आधार पर जब तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है तो इसकी सीमाएं अंर्तविद्यार्थी शोध का स्पर्श करके चलने लगते हैं।"(वही पृ-३०)

तुलनात्मक अध्ययन निरंतर सजगता एवं सक्रियता की मांग करता है | साथ ही निष्पक्षता एवं श्रम का यह कार्य है |संस्कारों के विपरीत जाकर तटस्थता से इस प्रकार का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है | कई बार शोधार्थी में अरुचि उत्पन्न होने की संभावना दिखाई देती है।

३.३.१.४. लोकतात्विक पद्धति:- साहित्य, समाज एवं संस्कृति के दो प्रकार होते हैं | एक शिष्टसाहित्य और दूसरा लोक साहित्य | आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कहा है कि शिष्ट साहित्य की लोकपरंपरा होती है और लोक साहित्य की लोक परंपरा होती है | लोक

साहित्य की लोक परंपरा के संबंध आमजन से है | सामान्य जनसाधारण से है | लोक साहित्य का क्षेत्र जैसे विश्रंखलित होता है वैसे विशिष्ट भी होता है लोक क्षेत्र, लोक मानस, लोक परंपराएं बेहद खुली एवं सर्वहितकारक होती हैं | उनमें अत्यधिक उदारता एवं परोपकारिता दिखाई देती है | यह लोकहित को साधने का कार्य करती है | कबीर की भाषा में 'सबका मंगल होई रे' का स्थायी भाव निहित होता है |

भारत में लोक भाषा और लोक साहित्य का आरंभ प्राकृत, पाली, अपभ्रंश से लेकर आधुनिक आर्य भाषाओं की बोलियों तक फैला हुआ है |वैसे नाट्य कला का निर्माण भी लोक के लिए ही सर्वप्रथम किया गया था | उसके शास्त्र की रचना बाद में भरत मुनि ने 'नाट्यशास्त्र' द्वारा की | लोक मानस में लोक जीवन, लोकवार्ता, लोककथा, लोकगाथा, लोकनाट्य, लोकोक्तियां, मुहावरे, पहेलियां, मुकरियां आदि का लेखन विशिष्ट पूर्ण है | लोक की संरचना का निर्माण सामूहिक चेतना से होता है | युगों युगों से वह जनमानस में परंपराओं के रूप में संजोय रहती है | मानवीय आदिम चेतना के सभी तत्व लोक साहित्य में भरे पड़े हैं |लोक साहित्य विविध रूपों में मौखिक - अमौखिक रूपों में परंपरा में जड़बद्ध हुआ है | लोक मानस सतत- सक्रिय, गतिशील एवं परिवर्तन कार्य होता है | उसमें व्यक्ति स्वतंत्रता, समानता, भातृमान एवं न्याय निरपेक्षता सर्वाधिक होती है | लोक मानस का निर्माण बेहद स्वतंत्र होता है | वह मनुष्य को किसी भी प्रकार की शास्त्रीयता में बांधकर रखता नहीं है | उसके चेतना, मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण का अध्ययन लोक साहित्य के द्वारा किया जाता है | लोकसाहित्य सार्वभौमिक होता है | वह सर्वजनहिताय - सर्वजन सुखाय के भाव से निहित होता है | शास्त्रीय अथवा परिनिष्ठित 'अहं' भाव से यह युक्त तथा उन्मुक्त अर्थात स्वच्छंद, अति स्वच्छंद होता है |

लोक साहित्य में बिंबात्मकता, प्रतीकात्मकता, मिथकियता सर्वाधिक होती है | 'मिथ' अपने-अपने स्वयं की खोज में 'अस्तित्व' की खोज में लोकतात्विक रूपों में दिखाई देता है | यही उसके जीवन एवं साहित्य की शक्ति या ऊर्जा है | बैजनाथ सिंह के एक लंबे उदाहरण में इसकी प्रक्रिया एवं क्षेत्र को समझा जा सकता है -'लोकतात्विक शोध की प्रक्रिया सामान्य शोध से ही होती है | यह शोध अंतर्विद्यावर्ती, सांस्कृतिक अथवा अन्य किसी भी दृष्टि से किया जा सकता है | यह शोध किसी भी दृष्टि से क्यों ना किया जाए - तात्विक उपलब्धि के लिए इसमें 'शब्द' या 'भाषा'के स्वरूप को अनिवार्यता समझाना होता है|"(सिंहल पृ.२९) काव्यरूप, काव्य भाषा की दृष्टि से इसमें कोई शास्त्रीयता का आधार नहीं होता है | भाषा लोकमानस के रूपों को उभारती है | भक्तिपरक साहित्य में लोकतात्विकता का यह स्वर अधिक मुखर होता है | इस पर लोक साहित्यिक शोध में जहां-जहां भी सांस्कृतिक पक्ष पर शोध किया जाएगा या अन्य दृष्टि से शोध में जहां भी परंपरा और संस्कृति की छाया दिखाई पड़ेगी वहां पर लोक तत्व का विश्लेषण अनिवार्यतः करना पड़ेगा |"(सिंहल पृ.२९) लोकतात्विकशोधके क्षेत्र में घूम फिर कर लोकगीतों, कथाओं का संग्रह करना अनेक कथाओं, गीतों के पाठ भेद को सामने लाना, उसकी प्रामाणिकता को सिद्ध करना आदि कार्य कठिनाई से भरा एवं श्रमसाध्य कार्य है।

३.३.१.५. भाषा केंद्रित पद्धति:- विषय केंद्रित प्रतिपादन अनुसंधान के बाद शोध में भाषा या शैली केंद्रित अनुसंधान कार्य महत्वपूर्ण होता है | रचना में लेखक द्वारा प्रयुक्त भाषा विशेषताओं का तथा शैली प्रयुक्ति का अध्ययन भाषा केंद्रित अध्ययन कहा जाता है | इसी

के अंतर्गत भाषा विज्ञान तथा भाषा विकास विषयक अध्ययन का अनुसंधान कार्य किया जाता है | भाषा तथा शैली से ही लेखक की यह मानसिक संरचना का बोध होता है इसे ही इस प्रकार के शोध में विवेचित किया जाता है | रचनाकार द्वारा रचना में प्रयुक्त भाषा, शब्द एवं उसके अर्थ के पारस्परिक संबंधों –विभेदों, विशेषताओं को जानना भाषा केंद्रित शोध पद्धति का कार्य है | शोध कार्य की दृष्टि से डॉक्टर विनय मोहन शर्मा तथा बैजनाथ सिंहल इसे दो भागों में बाँटकर देखते हैं | १. भाषा और २.अभिव्यक्त विषय | दोनों परस्पराश्रित है | साहित्य में प्रयुक्त भाषा एवं अर्थ का अनुसंधान ही भाषा केंद्रित अनुसंधान है | डॉक्टर नियत सिंह इसे समाज भाषा वैज्ञानिक, मनोभाषा वैज्ञानिक, राजनीतिक भाषावैज्ञानिक, अनुवाद वैज्ञानिक, शैली वैज्ञानिक तथा कोष वैज्ञानिक शोध अध्ययन के रूपों में रखकर भाषा केंद्रीय शोध की संकल्पना को व्यक्त किया है।

वस्तुतः इस प्रकार का शोध चिंतन परक शोध कार्य होता है |जिसमें सामाजिक प्रयोक्ताओं की और से प्रयुक्त भाषा रूप,स्तर,समाज, मानस का अध्ययन अपेक्षित होता है |उक्त पद्धतियों का इन दिनों शोध कार्य में बहुतायात रूप में प्रयोग हो रहा है | सेस्युर जैसे भाषा वैज्ञानिक की भाषा चिंतन सम्बन्धी भाषा प्रयुक्ति का शोध किया जा रहा है |उनके अनुसार “भाषा प्रत्येक इकाई के साथ कालगत परिवर्तन को ग्रहण करती है |इस तथ्य का विचार करते हुए उन्होंने स्वनिम फोनिम का विचार प्रस्तुत किया है |”(अनुसन्धान :स्वरूप और आयाम, पृ.८२)भाषा प्रयोग के पहले व्यक्ति या लेखक के मानस में उसका स्फोट रूप बनता है |वस्तुतः यह भाषा नहीं, वाक् या भाषण भाग कहना चाहिए |उसके लिए सेस्युर ने फ्रेंच भाषा में ‘ल पेरोल’कहा है |वह व्यक्ति परक तथा प्रसंग परक है |प्रत्येक व्यक्ति के भाषागत व्यवहार में बहुत भेद है |इसी से उसकी गतिशीलता का अनुमान लगा सकते है |”(शोध प्राविधि पृ. – ११९, विनय मोहन शर्मा)

फिर उसकी संकल्पनात्मक अभिव्यक्ति महत्वपूर्ण होती है | वाणी से पहले वह विचार है तद्परांत अभिव्यक्ति है | इसका तथ्यात्मक शोध इस प्रकार के अनुसन्धान में किया जाता है |

अधिकांश बार इस प्रकार के शोध में भाषा व्याकरण,उसका सामाजिक, व्यवहारिक प्रायोगिक रूप आदि का अध्ययन किया जाता है | भाषा अध्ययन भाषा विज्ञान की स्वतंत्र शाखा है | इसके अंतर्गत बोली, भाषा, विभाषा, उपभाषा के साथ लोक भाषा का अध्ययन भी शामिल होता है | इस प्रकार का अध्ययन बैजनाथ सिंहल के अनुसार दो प्रकारों में किया जाता है | पहला है वर्णनात्मक या संरचनात्मक इसमें शास्त्रीय दृष्टी से संरचनात्मक शाखाओं को आधार बनाकर अध्ययन किया जाता है | जैसे –(१) स्वन विज्ञान, (२)स्वनिम विज्ञान,(३)रूपिम विज्ञान, (४) शब्द रूप प्रक्रिया और (५) वाक्य विज्ञान |

दूसरा है व्यावहारिक अनुसन्धान - इसके अंतर्गत भाषा को व्यवहारिक रूप देने वाली भाषा विज्ञान की सभी शाखाओं - प्रशाखाओं को स्थान दिया जाता है | यथाः अर्थ विज्ञान, लेख विज्ञान, शब्दार्थ विज्ञान, शब्दकोष विज्ञान, भाषा, भूगोल, समाज भाषा विज्ञान, भाषा शिक्षण, अनुवाद, स्पीच थेरेपी, शैली विज्ञान तथा पाठ लोचन आदि |”(शोध :स्वरूप एवं मानक व्यवहारिक कार्यविधि पृ -४०) इसमें से अंतिम दो पृथक अध्ययन की शासकीय शाखा के रूप में विकसित हुए है |

भाषा के इस प्रकार के भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की चार पद्धतियों का उल्लेख बैजनाथ सिंहल ने किया है - (१) वर्णनात्मक, (२) एतिहासिक, (३) तुलनात्मक और (४) प्रायोगिक | वर्णननात्मकपद्धति के अंतर्गत भाषा की रचना प्रक्रिया का समकालिक विश्लेष्णात्मक विवेचन किया जाता है | एतिहासिक पद्धति में भाषा विकासकी श्रन्खला का अन्वेषण, तुलनात्मक पद्धति में किसी एक भाषा समकालिक भाषा या भाषाओँ के साथ संरचनात्मक विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है | प्रयोगात्मक पद्धति में भाषा के अन्यत्र उपयोग जैसे यांत्रिक उपकरणों, शब्दकोष निर्माण, लिपि सुधार इत्यादि पर विचार किया जाता है |"(वही पृ-४१) प्रयोगात्मक शोध वैयक्तिक न होकर संस्थागत होता है, सामूहिक होता है | भाषायी सर्वेक्षण का शोध भी इसी पद्धति के अंतर्गत आ सकता है |

३.३.१.६अनुशासनिक पद्धति :- अनुसन्धान कार्य मूलतः अनुशासनिक पद्धति है | अर्थात शोध की कार्यात्मक नीति को पहले सुनिश्चित किया जाता है और उसके मानकों के आधार पर शोध का विवेचन तथा निष्कर्षों का प्रतिपादन किया जाता है | इसके लिए हिंदी में 'अंतर्विद्यावर्ती' शब्द का प्रयोग किया जाता है | अंतर्विद्यावर्ती के लिए 'अंतर अनुशासनिक' शब्द प्रयोग किया जाता है | इसका सामान्य अर्थ है –"विद्याशाखाओं का पारस्परिक प्रभाव और सम्बन्ध विद्या – शाखा के नियमों तथा सिद्धान्तों के आधार पर इस प्रभाव का पहचानना |"**(सिंहल पृ.-३४)** शोध शिक्षा में अनुशासन का तात्पर्य किसी विषय में विशेषज्ञता से है | जो ज्ञान का एक विशिष्ट क्षेत्र है इसमें कार्य प्रणाली की समझ और विभिन्न अनुप्रयोगों के लिए विशेष ज्ञान प्राप्त करने, उसका विश्लेषण करने और उसे नियोजित करने की क्षमता शामिल है | शैक्षिक विषयों की उचित समझ सीखने में सहायता करेगी और यह सुनिश्चित करेगी कि प्राप्त ज्ञान को वास्तविक जीवन समस्याओं को हल करने के लिए प्रभावी ढंग से लागू किया जाए जो अध्ययन का प्रमुख कारण और लक्ष्य है | "यह उतनी सीधी – साधी अवधारणा नहीं है जितनी हम समझते है |

इसे ज्ञान के एक विशेष क्षेत्रों के रूप में देखा जा सकता है | विषय प्रतिपादन के लिए ज्ञान की एक शाखा द्वारा ज्ञान के सभी क्षेत्रों के बीच संबंध स्थापित कर उसे देखने, पढ़ने का यह एक तरीका है | मानविकी के सभी विषयों का अध्ययन अनुशासनात्मक पद्धति द्वारा किया जाता है | कला, इतिहास, भाषाएँ, साहित्य, संगीत, दर्शन, धर्म, कानून आदि इसके अंतर्गत आते हैं | साथ ही समाज विज्ञान के मानव विज्ञान, शिक्षा, भूगोल, राजनीति विज्ञान, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र आदि |

अनुशासन का अंग्रेजी अर्थ डिसिप्लिन है | आज हमारे सामने जो ज्ञान है यह मानवीय अस्तित्व के साथ ज्ञानात्मक अस्तित्व के रूप में निरंतर नए शोधों का परिणाम है अनुशासनात्मक शोधों का परिणाम है | इसके अंतर्गत ज्ञान संचयन, ज्ञान का विशेषीकरण और विखंडन, उपन्यास का गठन, ज्ञान का विविधीकरण और नये विषयों का निर्माण अनुशासनात्मक शोध के जरिए उभर कर आता है | अनुशासन के शोध में आवश्यकता इसलिए होती है कि शोध प्रक्रिया से प्रविधि से शोधार्थी अन्यत्र न भटक जाए | उपलब्ध तथा अनुपलब्ध अस्तित्व तथा अनास्तित्व ज्ञान सामग्री का समुचित विवेकपूर्ण विश्लेषण, संयोजन तथा उसके द्वारा निष्कर्षों का प्रतिपादन किया जा सके |

अनुशासन का ढांचा जैसे ज्ञान समाज में है वैसा शिक्षा और व्यवसाय के साथ अनुसंधान में भी है | प्रत्येक ज्ञान एवं माध्यम की आंतरिक अनुशासनात्मकता में ही उसकी संरचना निहित होती है | अनुशासन अपने आप को विकसित करता है यथा विषय को भी | अलग-अलग अनुशासनात्मक प्रकारों प्रविधियां से शोध के अद्यतन करने में तर्कशील तथा तथ्यप्रदान कर उसे सही दिशा देने में अंतर्दृष्टि प्राप्त करने में यह उपयोगी होता है | इसके तीन प्रकार मौजूद है

१. अनुशासनात्मक और अंतः अनुशासनात्मक

२. बहु अनुशासनात्मकता

३. अंतः अनुशासनात्मक और अंतर अनुशासनात्मकता

“इस प्रकार के अध्ययन से साहित्य का अध्ययन, साहित्य शास्त्रीय सिद्धांतों के अलावा मनोविज्ञान, सौंदर्य शास्त्र, समाजशास्त्र आदि किसी भी विद्या के आधार पर हो सकता है | ऐसे अध्ययन को अंतर्विद्यावर्ती अथवा अनुशासनात्मक अनुशासिक अध्ययन कहा जाता है क्योंकि यह अध्ययन साहित्येत्तर विद्या के आधार पर किया जाता है |”(वही पृ. ३४) इसमें लेखकीय अनुभूति तथा विचार तत्व की प्रवाहमानता, विचार पक्ष की मानव चेतना का अनुभूति रूप लेकर अभिव्यक्त होता है | इसमें निहित उद्देश्य की परख विचारों की अनेकरूपता को अन्य विद्या शाखाओं से चिन्हित की जा सकती है | यह शोध साहित्य शास्त्रीय शोध से निरपेक्ष होकर किया जाता है अन्य शोध विषयक विधाओं की प्रधानता इसमें आ जाती है | जैसे ‘कामायनी’ का मनोवैज्ञानिक अध्ययन डॉ नगेंद्र ने प्रस्तुत किया है आज भी कामायनी को इसी ढंग से पढ़ा एवं समझा जाता है |परिणामतःउसकेधर्म, संस्कृति एवं दर्शन संबंधी विचारों का अध्ययन हो नहीं पाता | इसके अध्ययन के लिए अन्य विद्या शाखों का आधार लेकर उसका अध्ययन करना जरूरी हो जाता है | इस प्रकार का अध्ययन मुक्तिबोध ने ‘कामायनी एक पूर्ण विचार’ में किया है | और इसमें केवल मनोविज्ञान प्रधान नहीं, ऐतिहासिकता, धर्म, दर्शन, पूंजीवाद, नव पूंजीवाद, उदारता, लोकतंत्र के विचार, भौतिकतावाद आदि अध्ययन बिंदु महत्वपूर्ण हो चुके हैं |

रचना का विखंडनात्मक अध्ययन भी अनुशासनिक अध्ययन के अंतर्गत आता है | इसके औचित्य के संबंध में बैजनाथ सिंहल ने कहा है कि ‘अंतर्विद्यावर्ती शोध आधुनिक युग की आवश्यकता है इसका कारण यह है कि ज्ञान अखंड भले ही होलेकिन उसकी प्रतिती और प्राप्ति के मार्ग अनेक है| इन मार्गों को ही हम विविध विधाओं के रूप में जानते हैं | इसके पूर्व ज्ञान का विभाजन दर्शन, विज्ञान आदि शाखों में नहीं किया गया था | कौटिल्य के ‘अर्थशास्त्र’ में हमें राजनीतिक और सामाजिक पहलू संश्लिष्ट रूप में ही प्राप्त होते हैं | गैलिलियो से पूर्व दर्शन और विज्ञान को एक ही समझा जाता था | उस समय दर्शन को मीमांसा दर्शन (स्पेक्युलेटिव फिलॉसफी) और विज्ञान को व्यवहारिक दर्शन (प्रैक्टिकल फिलॉसफी) के नामों से जाना जाता था | प्लेटो ने भी ज्ञान की अखंडता का प्रतिपादन किया था | इसके पश्चात विशेषज्ञता का युग आया और ज्ञान बंट गया | आधुनिक युग तक आकर ज्ञान का रूप विशलिष्ट हो गया है | इसी विशिष्ट रूप के प्राचीन दर्शन, साहित्य और विज्ञान तथा उनकी अनेक विद्या शाखाएं और प्रशाखाएं विकसित हुई | ये विद्या शाखाएं स्वतंत्र होते हुए भी परस्पर पूर्णतया निरपेक्ष नहीं है क्योंकि ज्ञान का आंकलिक विभाजन

नहीं किया जा सकता | प्रत्येक विद्या शाखा चूँकि जीवन को समझने का एक मार्ग प्रदान करती है इसलिए साहित्य का अंतर्विद्यावर्ती शोध स्तर पर अध्ययन भी अनिवार्य है क्योंकि साहित्य भी जीवन और ज्ञान की अखंडता का वाहक है |" (वही पृ.३५) एक प्रकार से यह अध्ययन एक दूसरे को प्रभावित करता है| एक दूसरे का अनुपूरक भी है तो विशेष भी है | इसे दो प्रकार की पद्धतियों से तिलक सिंह शोध मूल्य के रूप में देखते हैं – १. साहित्येत्तर विषयों के सिद्धांतों का साहित्यिक रचनाओं में प्रयोग, २. साहित्यकृति की संरचना के विश्लेषण संग्रहित नियमों या सिद्धांतों के आधार पर साहित्येत्तर विषयों के स्वरूप का निर्धारण |" (नवीन शोध विज्ञान पृ- ७३) अर्थात दो या दो से अधिक विधाओं का आधार लेकर अनुशासनिक शोध का अध्ययन किया जाता है| इन दिनों इस प्रकार की प्रवृत्ति शोध क्षेत्र में बढ़ती जा रही है |

३.३.१.७. गुणात्मक एवं परिमाणात्मक पद्धति:- गुणात्मक तथा परिमाणात्मक शोध पद्धति का प्रयोग शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोविज्ञान, बाजार, सामुदायिक धरना, लोक व्यवहार, समूह, समुदाय, संस्कृति के अनुभवों तथा व्यवहार को समझने में सहायक होता है | यह सर्वे, प्रश्नावली, साक्षात्कार आदि के द्वारा संकलित जानकारी अर्थात डेटा का विवेचन विश्लेषण किया जाता है | इसमें लोगों के रुझान, प्रभाव एवं परिणामों को समझने में मदद मिलती है | गुणात्मक अनुसंधान एक प्रकार से वैज्ञानिक अनुसंधान है | यह अपूर्ण जानकारी को पूर्ण करनेयानिष्कर्षोंको पाटने के लिए प्रयुक्त होता है | डेटा द्वारा प्राप्त जानकारी का व्यवस्थित साक्ष्य रूप में विश्लेषण करते हुए निष्कर्ष का प्रतिपादन करता है | यह किसी समुदाय संस्कृति या आबादी के व्यवहार, राय, विचार, मूल्य तथा अन्य सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, पहलुओं के बारे में विशिष्ट जानकारी को इकट्ठा करने समझने में इसका प्रयोग किया जाता है | समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में इसका ख्यात उपयोग है | समाजशास्त्रियों ने गरीबी, दरिद्रता, शिक्षा, गुनहेगार, बेरोजगारी जैसी समस्याओं को समझने के लिए तो मनोविज्ञानियों ने मानसिक प्रवृत्तियों के बदलाव से मानवीय व्यवहार में परिवर्तन को जानने समझने के लिए किया है | भाषा और साहित्य में भी इसी प्रकार की अध्ययन प्रवृत्ति को प्रयुक्त किया जाता है| विशेषतः भाषा सर्वेक्षण उसके संख्यात्मक, प्रयोक्ता, उनमें होने वाले परिवर्तनों, कारणों आदि की जानकारी गुणात्मक तथ्यों द्वारा एकत्र कर उससे निकलने वाले परिणामों के प्रति शोधार्थी अपनी राय जाहिर करता है | मीडिया या विज्ञापन क्षेत्र में भी इसका महत्व एवं उपयोग अधिक मात्रा में किया जाता है | जिससे व्यक्ति के सामान्य लक्षण, खान-पान, रीति – रिवाज, गुणों – लक्षणों,भेदों – समानताओं, व्यापारों को वर्णित किया जाता है |

सामान्यतः लोक व्यवहार, लोक रुचि, लोकभाषा आदि की जानकारी इस प्रकार के शोध पद्धति से की जाती है | गुणात्मक शोध मूल रूप से मानव के जीवित अनुभव, बातचीत और भाषा पर केंद्रित होती है | मनोविज्ञान, शिक्षा आदि के क्षेत्र में इसका उपयोग किया गया है | मनोविज्ञान में सामाजिक मनोविज्ञान, लोक – मनोविज्ञान, सांस्कृतिक मनोविज्ञान जिसमे भाषा अभिव्यंजक प्रवृत्ति, कल्पना कला, पौराणिक कथाओं, धर्म और नैतिकता पर गुणात्मक शोध किया गया | मनोविज्ञान के विज्ञान में प्रयोगशाला अनुसंधान के लिए महत्वपूर्ण बनाया गया है |

भाषा प्रयोग अध्ययन के क्षेत्र में समाज भाषाविज्ञान, मनोभाषा विज्ञान, राजनीति भाषा विज्ञान, प्रयोग भाषा विज्ञान आदि में किया जाता है | इसके अंतर्गत समाज के बहुविध एवं

विशिष्ट पहलुओं पर प्रकाश डाला जाता है | भाषा साहित्य एवं समाज के पारस्परिक सांस्कृतिकअंर्तसंबंधों तथा उसके सामाजिक स्तर भेदों, विविधता, संस्कृत संश्लिष्टता बहुभाषिकता सांस्कृतिक विस्थापन और भाषा विस्थापन,सामाजिक यथार्थ और भाषा प्रयोग सामाजिक एकरूपता, समता, विकास सांस्कृतिक सुरक्षा, राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता आदि का विवेचन समाज भाषा विज्ञान जैसे शोध पद्धति के कारण संभव हुआ है | समाज मनोविज्ञान तथा मनोभाषाविज्ञान द्वारा व्यक्ति तथा समाज मन से संचित संस्कारों, अनुभवों, व्यवहारों, क्रियाकलापों की परिणाम कारक जानकारी प्राप्त की जाती है | इसके लिए गुणात्मक या भावात्मक शोध विधि का प्रयोग किया जाता है | गुणात्मक अनुसंधान प्रकृतिवादी होता है |

गुणात्मक और मात्रात्मक डेटा दोनों की जानकारी का संग्रह करना है तथा उसका विश्लेषण करते हुए समानांतर मूल्यांकन प्राप्त निष्कर्ष की वैधता को जाँचने में मदद करता है और परिणामों के सामान्यीकरण में भी मदद करता है | इस विधि में एक दूसरे के डेटा की तुलना करते हुए दोनों शोध निष्कर्षों की वैधता की जांच करने में भी मदद करता है |

इस प्रकार के शोध में डेटा संग्रहकर्ता एक से अधिक होते हैं | उनके अनुभवों, व्यवहारों का सामान्य निरीक्षण करते हुए उससे उत्पन्न परिणामों को निष्कर्ष के रूप में प्रस्तुत किया जाता है | अधिकांशतः मानवीय वर्णन पद्धति का अवलोकन तथा उसके व्यवहारों के परिणामों का आकलन प्रस्तुत करना इसी शोध पद्धति द्वारा संभव होता है |

३.४ सारांश

इस इकाई को पढने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित विषयों की जानकारी प्राप्त कर सके |

१. अनुसन्धान के विविध प्रकारों को समझा |

२. अनुसन्धान के विविध प्रकारों के परस्पर सम्बन्धों से अवगत हुए |

३.५ लघुत्तरी प्रश्न

१. अनुसन्धान के कितने प्रकार है ?
२. तिलक संत के अनुसार ज्ञान - विज्ञान को कितने भागों में बांटा गया है ?
३. विखंडन की दूसरी रणनीति क्या है ?
४. अनुसंधान और आलोचना की समन्वित अवस्था से क्या निष्पन्न होता है ?
५. वर्णनात्मक पद्धति को कितने प्रकारों में बांटा गया हैं ?

३.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. अनुसन्धान के विविध प्रकारों को समझाइए |
२. कला की दृष्टि से अनुसन्धान के भेद को स्पष्ट कीजिए |
३. अनुशासनिक पद्धति को विशद कीजिए |
४. अनुसन्धान में भाषा और तुलनात्मक पद्धति के महत्व का वर्णन कीजिए |

३.७ संदर्भ ग्रन्थ

- नवीन शोध विज्ञान पृ - ७३
- अनुसन्धान : स्वरूप और आयाम,
- शोध प्रविधि - विनय मोहन शर्मा

✞✞✞✞

४

अनुसन्धान और आलोचना

इकाई की रूपरेखा :

४.१ उद्देश्य

४.२ प्रस्तावना

४.३ अनुसन्धान और आलोचना परस्पर सम्बन्ध

४.४ अनुसन्धान और आलोचना साम्य

४.५ अनुसन्धान और आलोचना वैषम्य

४.६ अनुसंधाता की अहर्ताएँ एवंगुण

४.७ सारांश

४.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

४.९ लघुत्तरी प्रश्न

४.१० संदर्भ ग्रन्थ

४.१ उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आपको निम्नलिखित विषयों की जानकारी प्राप्त होगी |

१. अनुसन्धान एवं आलोचना के परस्पर सम्बन्धों से अवगत होंगे |
२. अनुसन्धान एवं आलोचना के साम्य - वैषम्य से आप परिचित हो जाएँगे |
३. अनुसंधाता के गुणों / अहर्ताओं से आपका परिचय होगा |

४.२ प्रस्तावना

अनुसन्धान और आलोचना दोनोंमें अंतर होते हुए भी लगभग दोनों की पद्धति समान है | दोनों ही में अध्ययन प्रक्रिया समान है लेकिन दोनों के बीच के मौलिक भेद को नकारा नहीं जा सकता है | अनुसन्धान के लिए मूल वैज्ञानिक प्राविधि एवं तटस्थता अनिवार्य है वहीं आलोचना के लिए मर्म की अनुभूति का सर्वाधिक महत्व है |

४.३अनुसंधान और आलोचना परस्पर संबंध तथा भेद

अनुसंधान वस्तुनिष्ठ होता है तो आलोचना व्यक्ति निष्ठ होती है | अनुसंधान तथ्याश्रित होती है तो आलोचना रुचि संस्कारों से प्रभावित होती है | अनुसंधान में आलोचना का प्रयोग किया जाता है किंतु आलोचना में अनुसंधान प्रवृत्ति न के बराबर होती है | आलोचनात्मक

प्रवृत्ति अनुसंधान की सहयोगी होती है | विशेषतः शोध निष्कर्ष के प्रतिपादन के लिए शोध में तटस्थता, निरपेक्षता की अनिवार्यता होती है किंतु आलोचना एकांगी हो जाती है जैसे - आचार्य रामचंद्र शुक्ल की तुलसीदास संबंधी आलोचना नितांत एकांगी या एक दृष्टि से ही प्रभावित हुई है और यह दृष्टि तुलसी के वैचारिकता से रिश्ता नाता रखने के परिणाम स्वरूप शुक्ल जी में उभर कर आयी है| शोधकार्य मूलतः शोधार्थी के व्यक्तित्व, संस्कार, विचार का अनास्तित्व चाहता है | एक तरह से यह स्वयं का शोधन भी बन जाती है | स्वयं का परिमार्जन भी चाहती है | संपूर्ण शोध कार्य विधि आलोचनात्मक होती है परंतु शोध की अपनी वैज्ञानिक प्रणाली है | यह आलोचना का पर्यायवाची नहीं है न आलोचना अनुसंधान की | शोध तथ्याश्रित एवं वस्तुपरक होता है | शोधार्थी को शोध में तथ्यों की तर्कसंगता को बनाना जरूरी होता है | शोध का अनुशासन तथ्यों का अनुशासन है जिससेतथ्याश्रित निष्कर्षों का वह प्रतिपादन करता है | शोधार्थी को किसी भी तरह से अपने विचार, तर्क, संस्कार, शोध पर हावी नहीं होने देना है | क्योंकि शोध विषयनिष्ठ होता है जिसकी उससे अवहेलना नहीं होनी चाहिए | शोधार्थी को भावुकता से दूर रहना होता है | अन्यथा शोध आलोचना से प्रभावित हो जाता है | किंतु साहित्यिक शोध में डॉक्टर नगेंद्र के अनुसार बिना आलोचना को अपनाए शोध हो ही नहीं सकता यह बात इसलिए सही साबित होती है कि शोधार्थी को अनुसंधान में आलोचना का आश्रय लेना पड़ता है | आलोचक दृष्टि के अभाव में शोधार्थी का अन्वेषक होना असंभव है | बैजनाथ सिंहल ने कहा है कि आलोचना के साहित्य तक पहुंचने का मार्ग अलग है | आलोचना का विषय, शोध रचनाविषय की भांति परिकल्पित न होकर ज्ञान एवं स्पष्ट प्रत्यक्ष एवं निश्चित होता है | विवेच्य को आलोचना विषय के अनुरूपता में विवेचित करने का आलोचक उसके मर्म को उद्घाटित एवं संप्रेषित करता है|"(शोध स्वरूप एवं मानक व्यावहारिक कार्य विधि पृष्ठ -५१) आलोचना एवं अनुसंधान में परस्पर संबंधता शोधार्थी एवं शोध प्रवृत्ति के अनुसार निर्धारित होती है | अनुसंधान में आलोचना समाहित हो सकती है परंतु आलोचना में अनुसंधान नहीं | आलोचना अनुसंधान के लिए पूरक होती है परंतु अनुसंधान आलोचना का नहीं | आलोचना व्यक्ति संस्कारों, विचारों से प्रभावित होती है | अनुसन्धान तथ्यों से प्रभावित होती है | आलोचना में तर्क विषय प्रतिपादन की दृष्टि से जुटाए जाते हैं अनुसंधान में वैज्ञानिक तर्क पद्धति का उपयोग किया जाता है |

शोध की प्राविधि आलोचनात्मक हो सकती है किन्तु अनुसन्धान की प्रवृत्ति आलोचनात्मक नहीं होती |शोध की प्रक्रिया सुव्यवस्थित वैज्ञानिक प्रक्रिया है तो आलोचना कीप्रक्रिया चिंतन– मनन, संस्कारों - विचारों से प्रभावित प्रक्रिया से निष्पन्न होती है |

अनुसन्धान की कार्यविधि तीन प्रकार और चार तथ्यों की होती है

१. संयोजन – (i) समस्या को सुलझाने की प्रेरणा मिलती है |(Motivation)
२. विवेचन विश्लेषण – (ii) प्रासंगिक तथ्यों का संकलन (Collection of facts)
   (iii) विवेकपूर्ण विश्लेषण और विवेचन (Rational analysis of fact)
३. **निष्कर्ष** - (iv) निर्णायक स्वरूप (Conclusion) यह प्रक्रिया दो प्रकार से सम्पन्न होती है | १. प्रत्यक्ष उपयोगी और २.विशुद्ध ज्ञान – दर्शन साहित्य, मानविकी की शाखाएँ सौन्दर्य शोध यह प्रत्यक्ष उपयोगी नहीं है मगर हमारे समग्र चिंतन को प्रेरणा इससे मिलती है | प्रत्यक्ष अनुसन्धान में भौतिक विकास होता है | सभ्यताएँ पनपती है | विशुद्ध

ज्ञान से संस्कृति पनपती है |जहाँ हमारे सांस्कृतिक जीवन के मानदंडो को चिंतन की प्रेरणा मिलती है |हमारे मूल्यों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है | इन्ही मूल्यों का साहित्य में महत्व होता है| इन्ही मूल्यों की स्थापना में साहित्य, इतिहास, दर्शन, समाज, राजनीति यह सारे अपनी अपनी ओर से योगदान देते है | सौन्दर्य तत्वों की स्थापना करते है | साहित्य जीवन में स्थिरता स्थापित करने का कार्य करता है |

४. अनुसंधान की मुख्य दिशाएं तीनहै-

१. **तथ्यानुसंधान:-** जिसमें तथ्यों को खोजा जाता है |

२. **तथ्यानुख्यान:-** उपलब्ध तथ्यों का ज्ञान के नए आलोक में पूनरावलोकन करना या पुनर्व्याख्यायित करना |

३. **ज्ञान क्षेत्र की सीमाओं का विस्तार :-** अर्थात ज्ञान के क्षेत्र में सर्वथा नवीन विचार किसी मत या गुण की मौलिक स्थापना करना होता है |

ज्ञानवृद्धि या ज्ञान के नए क्षेत्र का उद्घाटन करना ही अनुसंधान का प्राण तत्व है | ज्ञानात्मकता ही अनुसंधान का अद्वितीय वैशिष्ट्य है | तथ्यानुसंधान के अंतर्गत किसी विषय से संबंधित साधिकार तर्कसंगत विवरण एवं आधारभूत सामग्री होती है | एक तथ्य के पूर्णतः अनेक संबंध, विवरण एवं अर्थ संबंधी योग पर निर्भर करता है | फल स्वरूप तथ्याख्यान के अंतर्गत अनेक तथ्यों के अनेक विषय संबंधों का विश्लेषण - विवेचन किया जाता है |मानव समाज की बहुमुखी चेतना के ज्वलंत परिप्रेक्ष्य में ही तथ्याख्यान किया जाता है | तथ्यों के सूक्ष्माति सूक्ष्म अर्थ एवं भाव चेतन में शोधकर्ता प्रविष्ट होने का प्रयत्न करता है | इसके लिए कभी वह रस दृष्टि, कभी अलंकार, कभी ध्वनि, तो कभी औचित्य दृष्टि को आधार बनाता है |शोधकर्ता को ज्ञान या अल्प ज्ञान से आज्ञा की ओर जाना होता है | दूसरे शब्दों में शोधकर्ता वर्तमान से भूत की ओर जाना चाहता है | शोधार्थी कुछ ज्ञान कुछ प्रकल्पना (अनुमान) और उत्साह के साथ शोध तंत्र का सहारा लेकर किसी निर्णय तक पहुंचने के लिए कृत संकल्प होता है | फलस्वरुप शोध विषय की तीन अवस्थाएं उभर कर आती है|

१. प्रतिज्ञा अनुसार शोध सामग्री का संकलन

२. संकलित सामग्री का वर्गीकरण एवं विवेचन

३. शोध प्रक्रिया द्वारा प्राप्त निष्कर्षों को सामने रखना

यही प्राप्त निष्कर्ष एक नया ज्ञान होगा | अर्थात हमारे भावजगत, कल्पनाजगत मेंऔर हमारे मनो जगत में वृद्धि होती है | ज्ञान का विकास होता है |

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि अनुसंधान की प्रकृति ज्ञानवर्धक, ज्ञान विस्तारक और जिज्ञासा की पूर्ति करने वाली होती है |

आलोचना की प्रकृति अथवा स्वरूप-: 'आड़' उपसर्ग पूर्वक'लुच'(दर्शन) धातु से बना आलोचना शब्द है |'आन' +'लोचन' शब्द से आलोचक शब्द बना है |'आन' का अर्थ है सब ओर से पूर्णतः| 'लोचन' शब्द लुच धातु से बना है और 'लुच' शब्द का अर्थ है देखना परखना | चारों तरफ देखना परखना समझना-

'आसमंतात आवलोकनम्‌ इति अलोचनाम्‌ इति'

आलोचना का अर्थ किसी वस्तु, किसी कृति को पूर्णतया देखना, समझना, परखना | साहित्य के संदर्भ में आलोचना शब्द का अर्थ है | किसी कृति विशेष का सांगोपांग विवेचन - विश्लेषण करते समय आलोचना में चार सोपानो का प्रयोग करना सांगोपांग विवेचन - विश्लेषण करना | किसी रचना विशेष का आलोचना प्रक्रिया में चार सोपानों का प्रयोग किया जाता है |१. रचना विशेष का अर्थ,२. उसकी व्याख्या,३. निष्कर्ष एवं ४. मूल्यांकन के द्वारा आलोचना कार्य पूर्ण हो जाता है | आलोचना रचना के प्रति अध्येता की प्रभाव परक प्रतिक्रिया होती है|

आलोचना क्या है ? इसका उत्तर देना हो तो कह सकते हैं कि कृति के प्रति पाठक की प्रभाव पर प्रतिक्रिया है | आलोचना को प्राचीन काल में 'गुणग्रहिका वृत्ति' के रूप में देखा जाता था | आलोचक की दृष्टि उस रचना के भाव सौंदर्य हो या रूप सौंदर्य पर लगी होती है | और इसलिए भारतीय काव्य शास्त्रियों ने आलोचना के आधारों को अलंकार, रस, वक्रोक्ति, औचित्य, ध्वनि, रीति को महत्व दिया | राजशेखर ने साहित्य विधा को महत्व दिया |

पाश्चात्य विद्वानों ने दोषोद्धाटन गुणात्मकता की अपेक्षा अपूर्णता को देखा है |१.मेथ्यु अर्नाल्ड ने गुन ग्राहक वृत्ति को आलोचना माना है |२.माउंटन और तन ने 'यथा तथ्य की निरूपण वृत्ति' को आलोचना कहा है |३.राबर्टसन ने 'तुलना को आलोचना' कहा है और तुलना करना मनुष्य धर्म है ऐसा कहा है |४.इलियट ने रुचि संशोधन को आलोचना का उद्देश्य माना है | अनुसंधान का विषय अज्ञात तो आलोचना का विषय ज्ञात होता है |

आलोचना का कार्य- भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों में आलोचना के संदर्भ में जो मत या व्याख्या की जाती है | उसमें आलोचना के प्रकृति का विषय पूर्णतः ज्ञात होता है | किंतु आलोचना लेखकीय अज्ञात विचार भाव - तत्वों का संधान करना है | इस समय रचना की जांच देरिदा की विखंडन प्रणाली, रचना के अज्ञात तत्वों, रचना में व्यक्त अंतर्विरोधी तत्वों को उजागर करने पर बल देती है |देरिदा के यहां भेद (डिफरेंस) और स्थगन (डिफरांट) लगातार रणनीति बनाते हैं | इसीलिए वे आसानियाँ और फतवों - फेसलों के लिए गुंजाइश नहीं छोड़ते | वे हर एक टेक्स्ट को संदेह से शुरू करते हैं | देरिदा का मानना है शब्द का अर्थ कहीं भी भाषा के अन्वय में वर्तमान नहीं होता है|" अर्थ हमेशा फिसलता है, उसमें फिसलन होती है, ("थाटा पर पारापारावारज्यों हलत है") भेद और स्थगन यहां सिद्धांत नहीं है और न ऐसे शब्द हैं जिनके अर्थ निश्चित हुए | किसी शब्दकोष में कैद है |" वे ऐसे शब्द है जो हर टैक्टके व्यंजकों (सिग्नीफायर) की श्रृंखला में सक्रिय रहते हैं जो लगातार भाषा और प्रतिनिधिकाल की श्लिष्टता और निश्चिति को अतिक्रांत और आक्रांत करते रहते हैं | (देरिदा विखंडन की सैद्धांतिकी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ सं.२००६पृष्ठ १३)

इसको थोड़ा अधिक विस्तार से देखना जानना वर्तमान परिवेश में आवश्यक है | प्लेटो, अरस्तु आलोचक आलोचना को दोयम दर्जे का काम मानते हैं | यही हाल साहित्य का भी रहा है | इसीलिए दर्शन के मुकाबले साहित्य हाशिए पर रहा है और समीक्षा रचना के मुकाबले हमेशा दूसरे दर्जे की नागरिक मानी जाती रही है | विखंडन बताता है कि आलोचना रचनात्मक साहित्य की गुलाम (सबोर्डिनेट) नहीं है | आलोचना कर्म रचना का पिछलग्गु है, गुलाम है, यह अवधारणा उन तमाम सिद्धांतिकियो में मौजूद है जो अरस्तु से अपना

उपजीव्य लेती है|" (वही पृष्ठ क्र.१४)भारतीय साहित्य और हिंदी में भी यही विचार सक्रिय रूप में मौजूद रहा है| भारतीय तथा पाश्चात्य काव्य शास्त्रीय सिद्धांतों को पढ़ते - पढ़ते हिंदी के छात्रों के दिमाग में भारतीय अलंकार रसवादी तथा पाश्चात्य विचारक अरस्तु आदि की बुनियादी अवधारणाएं बस जाती हैं | आलोचक अपने आप को दोयम दर्जे का मानने लग जाता है| कहानी, नयी कहानी में नामवर सिंह ने इस पिछड़ेपन का सहयोगी प्रयास कहकर प्रार्थना करनी चाहिए थी और बराबरी चाहिए थी | लेकिन चूँकि उनके तमाम औजार (आलोचनात्मक) उसी आलोचना से आते थे जिसके मूल में अरस्तु, इलियट थे इसलिए 'सहयोगी प्रयास' भी आलोचक को रचनाकार के बराबर नहीं ला सका | देरिदा के विखंडन ने इस क्रम को उलट दिया | देरिदा ने पहली बार साहित्य को दर्शन से भी बड़ा सिद्ध किया है| इन्होंने कहा साहित्य दर्शन है, सोचने का एक तरीका है| इस अवधारणा से तमाम परंपरावादी सिद्धांतिकियाँ परेशान होती है | विखंडन मानता है कि (१) आलोचना लेखन का एक तरीका है जो किसी चीज में से किसी चीज को खोजना नहीं है बल्कि उस टेक्स्ट में अर्थ का निर्माण भर सकता है जिससे वह संलग्न होती है| इसलिए वह रचना की तरह ही रचनात्मक है | जिस तरह रचना टेक्स्ट में अर्थ का निर्माण करती है,उसी तरह आलोचना टेक्स्ट में 'अर्थ का निर्माण' करती है | इसलिए रचना और आलोचना 'अर्थ निर्माण के दो तरीके' हैं | बड़े छोटे नहीं है| इस अवधारणा ने सिद्धांतिकी के परंपरावादीयों की नींद हराम कर दी है|

(२) विखंडन की दूसरी रणनीति यह है कि वह किसी भी 'टेक्स्ट' में मौजूद अर्थ को निश्चित, पक्का और पूरा नहीं मानता | वह नहीं मानता कि किसी टेक्स्ट या पाठ की पूरी तरह और अंतिमतः व्याख्या की जा सकती है | उसका मानना है कि पाठकुपाठ है|'मिसरीडिंग' है|"(वही पृ. क्र.१४)भाषा विचार के संदर्भ में देरिदाकोबौद्ध विद्वान नागार्जुन और भर्तहरि के नजदीक है | भारतीय बौद्ध धर्म में भाषा और अनुभव सिद्धि को महत्व दिया गया है|..... बौद्ध दर्शन में 'भाषा' काल्पनिकहै, विकल्प है, वह कर्त - कर्म का शून्य अनुभव है|.......देरिदा के यहां भाषा यथार्थ है| दोनों में यह भेद होने के बावजूद भी दर्शनों की 'एक केंद्रीयता को तोड़ते हैं|"(वही पृ. क्रमांक ७८-७९)अधिक जानकारी के लिए 'देरिदा का विखंडन भारतीय संदर्भ' देरिदा आलोचना द्वारा अज्ञात प्रकृति को ज्ञात करना मानते हैं | आलोचना उनके लिए अर्थ का नया अनुसंधान है |

आलोचना का प्रमुख कार्य रचना विशेष में व्यक्त विषय और उसमें परिगुम्फित रचयिता की अनुभूति के मार्ग का उद्घाटन करता है | इस कार्य में रचना की भाषा शैली एवं समसामयिक परिवेश भी आ ही जाता है | आलोचना का क्षेत्र वस्तु के साथ अनुभूति एवं भाव के विश्लेषण के साथ जुड़ा होता है | अतः आलोचक रचना के सभी अपने भावों को भी अभिव्यक्त करने का अवसर पाता है|

आलोचना कार्य के चार सोपान -

१. आलोचक रचना विशेष का मूल भाव समझता है |
२. रचना विशेष की अर्थ भंगिमाओं का एवं अन्य परिवेशों का परीक्षण, विश्लेषण, शब्द शक्तियों, अलंकारों एवं मनोविश्लेषण की कसौटियों द्वारा अनुभव करना या समझ लेना है|

३. रचना विशेष की कलात्मकता, भाषा शैली, वाद – संवाद,सौन्दर्यादि आदि का उद्घाटन करती है |
४. रचना विशेष का मूल्यांकन विविध दृष्टि से करना जैसे सौंदर्य शास्त्र, मानव मूल्य, नैतिकता,रसादि, समाजशास्त्र, मनोविश्लेषण शास्त्र आदि के आधार पर |

४.४अनुसंधान और आलोचना मेंसाम्य

अनुसंधान में तंत्र के माध्यम से ज्ञान का महत्व सिद्ध किया जाता है | अर्थात रचना तंत्र की रहस्यात्मकता अंततः ज्ञान सिद्धि होती है | वही शोध का क्षेत्र है | आलोचना में रचना का प्राण तत्व, भाव सौंदर्य एवं कलात्मकता का उद्घाटन करना प्रधान है | आलोचना सौंदर्य प्रधान है और अनुसंधान मेंज्ञान प्रधान है | इस प्रकार आलोचना में स्वरूप, प्रवृत्ति एवं लक्ष्य की दृष्टि से पर्याप्त साम्य है और वे दोनों एक दूसरे के पूरक है| अनुसंधान और आलोचना के साम्य को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जाता है–

१. अनुसन्धान और आलोचना दोनों ही साहित्य शाखाएँ है और दोनों का अंतिम लक्ष्य मानव के मस्तिष्क और ह्रदय को शक्ति, सुख और समृद्धि देना है |
२. अनुसन्धान और आलोचना दोनों के द्वारा ज्ञान एवं भाव जगत का विस्तार किया जाता है इसी प्रकार मानव चेतना का परितोष एवं समृद्धि की जाती है |
३. अनुसन्धान और आलोचना में तथ्य, संकलन, विश्लेषण, वर्गीकरण एवं निष्कर्ष प्रधान पद्धतियों का प्रायः उपयोग किया जाता है |
४. इन दोनों में वस्तुमुल्यात्मकता, सहजता और सम्भवता को महत्व दिया जाता है |
५. इन दोनों में प्रमाणीकरण के लिए अंर्तसाक्ष्य और बर्हीसाक्ष्य दोनों को अपनाया जाता है |
६. अनुसन्धान और आलोचना दोनों में प्रायः बौद्धिक इमानदारी समान रूप से अपेक्षित है |
७. और आलोचना अनुसंधान दोनों में भाषा शैली का समान महत्व है |
८. अनुसंधान और आलोचना दोनों में देशकालगत परिवेश का महत्व है|
९. अनुसंधान और आलोचना दोनों में वैज्ञानिक तथा तर्कपद्धति को अपनाया जाता है|
१०. अनुसन्धान और आलोचना दोनों में प्रतिभा, स्वानुभाव और सत्संग का समान महत्व है|

उक्त विवेचन से अनुसंधान और आलोचना का साम्य तो स्पष्ट होता है | परंतु अनुसंधान और आलोचना में सिद्धांत के स्तर पर कुछ मौलिक अंतर है | अनुसंधान ज्ञान प्रधान तथा तथ्य प्रधान है| इसकी तुलना में आलोचना सौंदर्य प्रधान एवं अभिरुचि प्रधान है | परंतु व्यवहार में दोनों प्रायः एक है | अनुसंधान में तो तथ्यों का प्रमाणीकरण और सामग्री संकलन है | आलोचना में वही व्याख्या, विश्लेषण और सौंदर्य विवेचन है | दोनों में विभिन्न

सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक कसौटी के माध्यम से निर्णय तक पहुंचा जाता है| आलोचना में सौंदर्यपरक दृष्टि का असाधारण महत्व है|

संक्षिप्त में यह कि अनुसंधान द्वारा अज्ञात या अल्पज्ञात तथ्य, सत्य को प्रस्तुत किया जाता है | उसकी तुलना में आलोचना उस तथ्य का विविध आयामों में,संदर्भों में, विवेचन - विश्लेषण कर पाठक की आनंदवृत्ति तथा सौंदर्यवृत्ति की संवेदना को जाग्रत करती है|

४.५ अनुसंधान और आलोचना में वैषम्य

अनुसंधान प्रकृति की दृष्टि से विज्ञानात्मक, बुद्धि -प्रधान एवं तथ्यात्मक है | आलोचना में कला – अभिरुचि, संस्कार एवं भावात्मक दृष्टिकोण की प्रधानता है | तात्पर्य यह कि अनुसंधान और आलोचना जहां अनेक स्तरों पर पर्याप्त साम्यता रखती है | वहाँ स्वरूप, दृष्टिकोण, पद्धति एवं अभिव्यक्ति के स्तर पर इन दोनों में पर्याप्त मात्रा में वैषम्य में दिखाई देता है | अनुसंधान स्वरूपतः बुद्धि प्रधान, विज्ञान प्रधान है, चिंतन से ओत –प्रोत है | उसकी संपूर्ण प्रविधि वैज्ञानिक है | अपने प्रयोजन के अनुरूप ही आलोचना भाव योग प्रधान व ज्ञान योग प्रधान होती है |

संक्षेप में इन दोनों में निम्न प्रकार का वैषम्य में पाया जाता है-

अनुसंधान:-

१. अनुसंधान ज्ञान, तथ्य एवं सत्यप्रधान है |
२. अनुसंधान से तथ्य के प्रति 'क्यों' और 'कहाँ' पर बल दिया जाता है |
३. अनुसंधान एक वैज्ञानिक प्रविधि है|
४. अनुसंधान में मूल वस्तु के अन्वेषण एवं तात्विक प्रस्तुतीकरण का महत्व है |
५. अनुसंधान में विषय मुख्य होता है |
६. अनुसंधान के कई रूप है जैसे जीवनी, पाठानुसंधान, संदर्भ सूची, परिशिष्ट, ऐतिहासिकता, भाषा वैज्ञानिकता, मनोवैज्ञानिकता, समाजशास्त्रीयता, तुलनात्मकता यह सभी रूप शुद्ध तथा संकल्प संकलन परक है |
७. अनुसंधान में अल्प ज्ञान या अज्ञात तथ्य के अन्वेषण का महत्व है |
८. अनुसंधान में बौद्धिकता का, वस्तुपरक ज्ञान का महत्व है |
९. अनुसंधान में तटस्थता एवं स्थिरता के तत्व का अधिक है |

आलोचना

१. आलोचना ज्ञान एवं तथ्य के माध्यम से प्रभाव एवं चैतन्य को प्राधान्य देती है |
२. आलोचना में तथ्य के प्रति 'किसे' और 'क्यों' अर्थात रचना विशेष की रागगाम्भिर्य का विवेचन होता है |
३. आलोचना मूलतः कला या भाव प्रधान प्रक्रिया है|
४. आलोचना में शब्दार्थ के अनुरूप प्राप्त विषय वस्तु के अनुभूति पक्ष के निरीक्षण एवं प्रशिक्षण का महत्व है |
५. आलोच्य विषय के साथ आलोचक की प्रतिक्रिया व्यक्त होती है |

६. आलोचना में इन रूपों की किसी प्रकार की कोई भूमिका संभव नहीं है | शब्द शक्ति सौंदर्य चेतना एवं ध्वनि मूलक अध्ययन में स्थूल तथा संकलन पद्धति व्यर्थ है |
७. आलोचना में विवेचन - विश्लेषण का महत्व है इसलिए प्राप्त विषय का क्षेत्र सीमित है |
८. आलोचना रचना के प्रति बौद्धिकता एवं भावात्मक प्रक्रिया अथवा प्रतिक्रिया है |
९. आलोचना में व्यक्तिगत प्रगाढ़ता, प्रभाव की अधिकता है | जिससे तटस्थता एवं स्थिरता कम हो जाती है |

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अनुसंधान और आलोचना इन दोनों में पर्याप्त वैषम्य है| फिर भी यह दोनों परस्पर पूरक है| दोनों का साहित्य में निर्विवाद महत्व है | इधर इन दिनों में साहित्य के क्षेत्र में पूरक वैषम्य महत्वपूर्ण हो गया है |

परस्पर संबंध की दृष्टि से आलोचना और आलोचना परक अनुसंधान देखने में आता है यह है भी| साहित्यिक अनुसंधान में आलोचनात्मक विश्लेषण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है |

इसी प्रकार आलोचनात्मक कृति में अनुसंधान की तत्वदृष्टी उभरती है | यदि आलोचना को अनुसन्धान से दूर रखा जाएगा तो उसकी परिणति केवल तथ्य संकलन में होगी | परिणाम स्वरूप अनुसंधान द्वारा लिखा गया शोध प्रबंध केवल आंकड़ों और घटनाओं का पुंज होगा | जिसमें केवल सूचनाओं की ही प्राप्ति होगी | यह बात दूसरी है कि सूचकता अनुसंधान का एक प्रमुख अंग है | परंतु हमें यह भी याद रखना चाहिए कि केवल एक अंश के परिवर्तन से सर्वांग का पोषण नहीं होता| अंगों का अस्तित्व उसके सर्वांगीण विकास में निहितहै|अतएव सर्वांग पूर्ण साहित्यिक अनुसंधान में शोधार्थी की दृष्टि व्यापक फलक पर होती है | जिससे व्याख्या, विवेचना करते हुए शोधार्थी कुछ एक निश्चित निष्कर्षों पर पहुंचता है |

निष्कर्षत : अनुसंधान और आलोचना की समन्वित अवस्था ही सत्य को, तथ्य को प्रतिष्ठित करती है और फलस्वरुप साहित्यिक अनुसंधान अपनी समग्र अर्थवत्ता प्राप्त करता है | अतः अनुसंधान और आलोचना में वैषम्य की अपेक्षा साम्य अधिक है | और यह दोनों एक दूसरे के विरोधी और पूरक की अपेक्षा सहयोगी और पूरक अधिक है | दोनों का साहित्यिक क्षेत्र में असाधारण महत्व स्वीकार किया जाता है |

४.६अनुसंधान के गुण और अहर्ताएं

छात्र – अनुसंधाता, शोधक अनुसंधान से जुड़ा है | शोध करते वक्त उसके साथ उसकी योग्यता होती है | परिश्रम और गंभीरता के साथ जो आगे बढ़ता है वही शोधार्थी अपने शोध कार्य में यशस्वी होता है | अनुसंधान कार्य समय में उसे सभी प्रकार की सुविधाओं को त्यागना पड़ता है | शोध कार्य में अपने आचार– विचार, संस्कार, पारिवारिक, अपने समाज, वर्ग, वर्ण की मान्यताओं, रूढ़ियों, परंपराओं का त्याग कर खुले मन- मस्तिष्क से शोध कार्य में प्रवृत्त होना अति आवश्यक है | वहाँ पर उसे तटस्थ रहकर भौतिक, व्यावहारिक, सामाजिक जीवन की प्रतिबद्धता को त्यागना पड़ता है |

उसी क्षेत्र में निपुण, तज्ञ, अन्वेषी, अनुभवी जो व्यक्ति होता है वही शोध मार्गदर्शक होता है | छात्र को एवं उसके शोध कार्य को सही योग्यतम दिशा देने का कार्य शोध निर्देशक को करना पड़ता है |

शोध निर्देशक और शोधार्थी इन दोनों का परस्पर घनिष्ठ संबंध होता है | शोध निर्देशक के मार्गदर्शनानुसार शोधार्थी अपने शोधकार्य में यथा समय सफलता प्राप्त कर सकता है | तात्पर्य यह है कि शोध निर्देशक में भी विशिष्ट योग्यताएं होनी चाहिए | इधर इन दिनों विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय में जो शोध कार्य हो रहा है उनके शोध निर्देशक में भी कुछ योग्यताओं का होना नितांत आवश्यक है |

शोधकार्य में शोधकर्ता एवं शोध निर्देशक एक साथ जुड़े होते हैं | यह एक सिक्के के दो पहलू हैं | शोध इन दोनों के दृष्टि, विचार से नवीनता प्राप्त करता है | इधर कई शोध निर्देशक शोधार्थी के कॉपी पेस्ट प्रवृत्ति को बढ़ा रहे हैं या उन्हें स्वयं लिखवा कर देने में ही शोध कार्य समझ रहे हैं | इससे शोध स्तरीयता घटती है | अनुसंधाता भी केवल उपाधि के लिए इस प्रकार के कार्य में अपने आप को झोंक देता है | इससे न शोध का भला होता है, न समाज काऔर नही देश का | हिंदी के शोध की स्थिति इस समय बेहद गंभीर बनी हुई है |

दोनों में शोध कार्य संबंधी उचित दृष्टि न होने तथा विषय का उचित ज्ञान न होने से शोध विषय का निर्वाचन, विवेचन - विश्लेषण तथा निष्कर्षों की योग्यतम प्राप्ति असंभव होती है | यह प्रश्न शोध में सदैव उठता रहा है कि शोध का सच्चा अधिकारी कौन है? प्रतिभा, विषय का ज्ञान, विषय को समझने देखने का उचित दृष्टिकोण, वैज्ञानिक प्रवृत्ति, तर्कशीलता आदि गुण जिसके बिना है या जिसके पास होता है वह शोध का अधिकारी हो सकता है | शोधकर्ता से पहले शोध निर्देशक की योग्यता तथा गुणों का ध्यान रखना जरूरी है |

उसकी सामान्य योग्यताएं निम्न प्रकार की होती हैं–

१. शोध निर्देशक स्वयं एम. ए., पी एच. डी. हो अर्थात वह स्वयं शोध उपाधि प्राप्त किया होना चाहिए |
२. उसने स्वयं शोध लेखन किया हो | निर्देशक के स्तरीय शोध लेख छपे हो, उसे पर कार्य किया हो, उसका अनुभव उसे हो | अर्थात उसकी शोध विशेषता स्थापित की गई हो | शोध प्रविधि का उत्तम ज्ञाता हो|
३. शोध निर्देशक निर्दिष्ट विषय का विशेषज्ञ हो यह अपेक्षा होती है | शोध निर्देशक को शोधार्थी को शोध विषय का चयन, शोध सामग्री का संकलन, शोध सामग्री का परीक्षण, वर्गीकरण तथा निष्कर्षों में सहयोग देना चाहिए | शोध निर्देशक पद प्रदर्शक होता है | पथ निर्माता नहीं | शोध निर्देशक स्वयं का भी पथ निर्माण करें और शोधार्थी के पथ निर्मित में सहयोग करें | इतना ही नहीं शोधार्थी को शोध से संबंधित सामग्री संकलन में सहायता करें | कहीं - कहीं ऐसा सुना गया है कि निर्देशक स्वयं शोधार्थी का कार्य पूरा कर देता है | यह प्रवृत्ति गुण नहीं, दोष है | यह शोधार्थी की प्रतिभा, निष्ठा, प्रतिष्ठा एवं मेघा का मरण है | इस प्रकार के शोध के क्षेत्र में होने वाले प्रचलन से शोधकर्ता में काम चोरी, मिथ्या अहंकार तथा छल की प्रवृत्ति बढ़ने की संभावना होती है | जिससे समाज, देश की शोध बुद्धि - संस्कृति नष्ट होती है | ऐसा व्यक्ति समाज, देश, शोध के क्षेत्र में जिन बुलंदियों पर पहुंचना चाहिए पहुंचता नहीं है | खैर आपके पाठ्यक्रम में शोध

निर्देशक के गुणोंतथा योग्यताओं को भले ही शामिल न किया गया हो फिर भी शोधार्थी को उसे जानना समझना आवश्यक है |

शोधकर्ता या अनुसंधाता:-

अनुसंधाता या शोधकर्ता के पासशोध कार्य में जुड़ने से पहले यूजीसी, राज्य सरकार तथा संबंधित विश्वविद्यालय द्वारा तय की हुई शैक्षिक अहर्ताओं का होना आवश्यक है | इसके पहले एम.फिल के लघु शोध उपाधि के दौरान शोध प्रविधि एवं प्रक्रिया को शोधार्थी समझ जाता था | एम. फिल अब बंद हो चुका है |लेकिन उसकी शैक्षिक योग्यताओं का अध्ययन करना विषय दृष्टीसे अनिवार्य है जो निम्न है-

१. शोधकर्ता एम.ए. उत्तीर्ण हो |
२. किसी शोध रीति परीक्षा उत्तीर्ण है | इस समय यूजीसी ने पीएच.डी प्रवेश क्षमता परीक्षा उत्तीर्ण करने वालों को ही पीएच.डी प्रवेश के लिए अनुमति प्रदान की है | इसके तदुपरांत शोध प्रविधि एवं प्रक्रिया संबंधी कोर्स वर्क करना उन्हें आवश्यक है | वस्तुतः शोध प्रक्रिया एवं प्रविधि में संलग्न होने से पहले भी शोधार्थी में कुछ शोध गुणों का होना आवश्यक है |
३. शोधक्षमता का किसी शोधार्थी शोध –निबंध या उपाधिया प्रमाण देना आवश्यक है |
४. शोधकर्ता को पंजीकरण करने के लिए दिए गए उचित समय में ही उसे पंजीकृत होना चाहिए |

जो विद्यार्थी शोध क्षेत्र में अधिक स्तरीय शोध कार्य करना चाहते हैं उनमें अहर्ताओं के अतिरिक्त गुणों का होना आवश्यक है |

अनुसंधाता के गुण:-

१. जिज्ञासा:-

अनुसंधाता को वैज्ञानिक चिंतन में प्रवीण होना चाहिए, तर्कशील होना चाहिए | साथ ही साथ वस्तुनिष्ठता को महत्व देना तथा प्राथमिकता देना चाहिए | वह जब अनुसंधान में प्रविष्ट होता है तब वह अनुसंधान विषय से प्रेम करने वाला होता है | उसमें साधना शीलता तथा साधना की इच्छा, आकांक्षा हो | शोधकार्य के दौरान आने वाली कठिनाइयों को झेलने की क्षमता उसमें हो | वह विचार शक्ति से संपन्न हो | बौद्धिक ईमानदारी उसमें हो | स्मरण शक्ति भरपूर मात्रा में उसमें होनी चाहिए |स्वतंत्र एवं उद्देश्यपूर्ण कार्य करने की इच्छा उसमें निहित हो| जब तक उद्देश्य पूर्ण कार्य करने की उसमें इच्छा होगी तब - तब अनुसंधान का कार्य पूरा करने की संभावना होगी | वास्तव में ज्ञानी शोधकर्ता वह होता है जो उपाधि निरपेक्ष होकरशोधकार्य में लगा रहता है | शोधकर्ता अपनी शोध रुचि का प्रभाव स्वाध्याय, चर्चा, प्रकाशित कार्य के द्वारा देसकताहै|

किसी भी प्रकार से क्यों ना हो एक बार शोध कार्य में प्रवृत्त होने के बाद पूरी लगन से शोध कार्य पूरा करना चाहिए | यदि शोध निर्देशक शोधार्थी से किसी अध्याय या प्रकरण को बार-बार दिखाएं और उसकी कमियों, त्रुटियों, दोषों को दुरुस्त करने के लिए कहे तो

शोधकर्ता को यह कार्य निरंतर करना चाहिए | इससे शोध कार्य में निरंतर परिष्कार एवं संस्कार होता है | तात्पर्य यह की शोधक में श्रमसाध्यता और सहनशीलता होनी चाहिए | शोध कार्य से शोधक तथा निर्देशक संतुष्ट होने चाहिए | सच्चा शोधकर्ता लेखन, श्रवण से घबराता नहीं है | परंतु कामचोर शोधक शोध कार्य के प्रत्येक स्तर पर छल - कपट एवं धोखाधड़ी से काम ले सकता है | सामग्री संकलन में नकली और असली तथा कम को ज्यादा बनाने की चालाकी प्रायः देखने में आती है | वर्गीकरण, परीक्षण तथा व्याख्या आदि में भी आलसीएवं कामचोर शोधकर्ता प्रयत्नलाघव के सूत्रों को अपनाने का यत्न करता है | फलस्वरुप उसका प्रत्येक कार्य स्तर की दृष्टि से झूठा एवं अप्रमाणिक साबित होता है | शोध कार्य में शोधकर्ता को इतनी प्रामाणिकता तथा ज्ञानवृत्ति से संलग्न होना चाहिए कि उसे अपने श्रम का बोध भी न हो या अध्ययन का परिश्रम भी महसूस न हो | तात्पर्य यह है कि शोधकर्ता श्रम में ही आनंद लेने का आदि हो | क्योंकि शोध कार्य विवेकशील एवं कर्मठ व्यक्ति का इसक्षेत्रमेंभावितव्य तय होता है | सच्चा शोधक वही है जो यह जानकर चलता है कि विवेकपूर्ण अथक परिश्रम ही शोध की सार्थकता का महामंत्र है |

शोधकर्ता में उपरोक्त सभी गुण शोध विषय - कार्य के प्रति अपार जिज्ञासा के कारण उभर कर आते हैं | जिज्ञासा ही अनेक प्रश्न, शंकाएँ शोधार्थी में उत्पन्न करती है और शोधार्थी जब तक उसका समाधान नहीं करता तब तक शोध सार्थक नहीं बन सकता है | जिज्ञासा ही शोध में गहनता एवं गंभीरता लाने के लिए सहयोगी होती है | आँख मूंदकर रचनाकार तथा आलोचकों के विचार, दृष्टिकोण को स्वीकारने वाला शोधकर्ता अंधा होता है | अपनी विवेक बुद्धि को सतत जागरूक रखते हुए हर कथन, विचार, विषय, घटना के प्रति शोधार्थी को जिज्ञासु होना चाहिए | जिज्ञासा नवीन शोध की जननी होती है |

२.निष्पक्षता, विषयपरकता और सारग्रहिणता:-

व्यक्ति संस्कार में फर्क होता है | वह संस्कार निजी रुचि, जातिगत, धर्मगत, नैतिक, व्यक्तिक आदि धारणाओं में दिखाई देते हैं | यह भिन्न-भिन्न होते हैं और जब वह किसी कृति, वस्तु, घटना का मूल्यांकन करता है तो इसी कसौटी पर करता है | लेकिन अनुसंधान में कार्य करते वक्त उसे पूर्ण निर्लेप होना चाहिए | अपनी मान्यताएं वहाँ पर नहीं होती | शोध में वैज्ञानिक निष्कर्ष नहीं आ पाते| इसलिए शोधार्थी को अपना विचार – संस्कार वाला चश्मा उतार कर वह चश्मा पहनना चाहिए जिसमें वैज्ञानिकता एवं तर्कशीलता के प्रमाण निष्कर्ष मिलते हो | अपनी प्रतिबद्धता से उसे बाहर निकलना चाहिए | उसकी छाया में किया गया शोध कार्य वैज्ञानिकता को अपनाकर भी किया गया हो तो भी वह सही परिणाम देता नहीं है | और इसका समाज, देश को कोई लाभ नहीं मिलता | कहा गया है कि “आग्रहों से पूर्वाग्रहों की छाया में रहने वाला शोध बंद मस्तिष्क का होता है |” अर्थात शोधकर्ता को तटस्थ रहना चाहिए, विषयपरकएकाग्र रहना चाहिए और सारग्रहित होना चाहिए | कबीर ने जो साधु की परिभाषा दी है वही शोधक की होती है–

“साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय|

सारसार को गहिरहै, थोथा देई उड़ाय||”

सामग्री संकलन करते समय, उसका विवेचन - विश्लेषण करते समय उचित को लेना, ग्रहण करना और योग्यतम निष्कर्षों का प्रतिपादन करना शोधार्थी का उत्तम गुण होता है | अन्यथा प्रबंध के पृष्ठ संख्या तो बढ़ती है परन्तुस्तरीयतानहीं |

३.दृढ़ता हो:- शोध कार्य ज्ञान प्रधान और मौलिक कार्य है | ऐसे कार्य के लिए शोधकर्ता कृत संकल्पित होता है | शोधक हर परिस्थिति में पूरी दृढ़ता के साथ शोध कार्य में लगा रहना चाहिए | अत्यंत प्रतिकूल परिस्थिति में भी शोधार्थी अपना मनोधैर्य कम न करना शोध में सफलता हासिल करने के काम आती है | उसका श्रम कई बार व्यर्थ हो सकता है | शोध यात्रा व्यर्थ जा सकती है | शारीरिक, मानसिक या पारिवारिक संकट आ सकते हैं | सामग्री संकलन का संकट आ सकता है | फिर भी शोधकर्ता को अपने शोध कार्य को सर्वोपरि महत्व देना चाहिए |

४.शंकाशीलता:-जिन शोधार्थी की दृष्टि केवल फल पर होती है वह धीरे-धीरे स्वार्थी, लोभी, कामचोर, धोखेबाज, भोगी, होते हैं | शोधकर्ता को अपने विषय के प्रति हमेशा शंकाशील होना चाहिए | शंका सद्भाव पूर्ण एवं निर्माण कार्य चेतना के साथ होना चाहिए | शंका के विषय में यह ध्यान रखना चाहिए कि वह बलातन की न गई हो | कृत्रिम न हो, बुद्धि विलासी न हो | शोधार्थी को एक नास्तिक की भांति शोध विषय को लेकर प्राक्कल्पना के अनुकूल - प्रतिकूल शंकाएँ निर्माण करनी चाहिए और उन शंकाओं के पक्ष - विपक्ष दो स्तरों पर रखकर न्यायाधिक की भांति विषय के प्रति न्याय करना चाहिए | वकील की तरह काले का सफेद और सफेद का काला नहीं करना चाहिए | सच्चे शोधकर्ता को अंततः अपने अनुभव की प्रामाणिकता और निर्णय का आदि होना चाहिए | अर्थात उसे अपनी सद –सद विवेक बुद्धि को अनुस्वर विवेचन - विश्लेषण एवं निष्कर्षों का प्रतिपादन करना आवश्यक है |

५.शोधक को अपने विषय के गुण और मर्यादा का ज्ञान होना चाहिए:-

शोधकर्ता को शोध विषय संदर्भ - सामग्री का गहन गंभीरता से अध्ययन करना अनिवार्य है | इतना ही नहीं शोधक को अपने विषय को पल्लवित करने के लिए विषय से संबंधित अन्य सहायक सामग्री का ही मनोयोग से अध्ययन करना अनिवार्य हो जाता है | शोधक अपने विचारों को पुष्ट करने के लिए और अपने शोध विषय से संबंधित विद्वानों के विरोधी विचारों का खंडन करने के लिए उद्धरण या अवतरण का उपयोग करता है | ऐसी स्थिति में शोधक को उद्धरणों के मूल स्रोतों का अध्ययन कर पूरी तत्परता से उसका उपयोग करना होगा | प्रायःउद्धरण एवं संदर्भ किसी ग्रंथ से नकल करके रख दिए जाते हैं | इस प्रकार की कृति आयोग्य मानी जाती है | शोधकर्ता को 'नीरक्षीर विवेकी' होना जरूरी है | शोधार्थी में तत्व ग्रहण की जैसी शक्ति होनी चाहिए | शोध विषय के गुण, महत्व एवं मर्यादा का ज्ञान जिस शोधार्थी को होता है उसका शोध कार्य उचित परिणाम देता है | शोध कार्य एवं शोध विषय के लिए यह ज्ञान शोधार्थी को आवश्यक होता है |

६.वैचारिक स्पष्टता और निर्णय क्षमता:- शोधक को अनेक स्रोतों से तथ्य एवं विचार एकत्र करने होते हैं वे तथ्य या विचार कभी-कभी शोधक को उलझन में डाल देते हैं | ऐसी स्थिति में शोधकर्ता में निभ्रांत मति की विषय का शुद्ध रूप सामने लाता है | यदि शोधकर्ता किसी उलझन में अस्पष्टता में या अतिवैचारिकता या अनिर्णयता में फँस गया या उलझ गया तो शोध कार्य में गति नहीं आती| शोधक को शोध विषय को छोटे छोटे भागों मेंविभाजित

कर विषय की स्पष्टता और निर्णय क्षमता को विकसित करना चाहिए | यह तभी संभव है जब शोधार्थी में वैचारिक स्पष्टता और निर्णय क्षमता होती है |

सामग्री की अधिकता, अध्ययन की अनवरतता और लगनता की एकांतता पर वैचारिक स्पष्टता आती है। शोधक में वैचारिक स्पष्टता आने से निर्णय लेने की क्षमता निर्माण होती है। वैचारिक दृष्टि से अस्पष्टता बहुत विचार करके भी निर्णय पर नहींआरही है तो समझना चाहिए शोधार्थी और शोध विषय भटक जाता है। अंतरिम बहस और निर्णय का अभाव यह कमजोर मस्तिष्क का लक्षण होता है|" शोधक को ऐसी बहस में नहीं पड़ना चाहिएजिसका अंत न हो | निर्णय के पीछे तर्क का होना अनिवार्य है| एक बात ध्यान रहे शोधक को विचारशील होना चाहिए पर उसकी भी सीमा होनी चाहिए|

७.स्वास्थ्य एवं बाह्य परिस्थितियों की अनुकूलता-: विषय चयन करने से पहले यह विषय हमारे स्वास्थ्य के अनुकूल है या नहीं इसके बारे में शोधार्थी को देखना और सोचना चाहिए| शोधक को तन - मन की दृष्टि से स्वस्थ होना चाहिए | आर्थिक, पारिवारिक और देशस्तरीय स्थितियां शोधक के अनुकूल होनी चाहिए |अंतर्बाह्य मौसम की मार शोधार्थी को शोध से विचलित करती है | खासकर सर्वे, ऐतिहासिक, भाषा संबंधी शोधों के साथ साथ पाठानुसंधान में यह दिक्कतें आती हैं |

८. भाषा एवं अभिव्यक्ति पर अधिकार-: भाषा ही उसके विचारों एवं भावों को प्रकाशित करती है | शोधक को भाषा में समृद्ध होना चाहिए | भाषा प्रयोग में दक्ष होना चाहिए | विशेषतः साहित्यिक शोध में |

शोध की भाषा ज्ञान मूलक, तथ्य प्रधान तथा सत्यता प्रतिपादन करने वाली हो, यह आवश्यक है | सरल, प्रांजल, स्पष्ट एवं कसी हुई विषयानुकूल भाषा प्रयोग शोध में जरूरी होती है | साहित्यिक अनुसंधान में सत्यानुसंधान में समान तथ्य - सत्य के प्रतिपादन का महत्व भाषायी दृष्टि से अधिक होता है |

सामग्री संकलन के बाद तथ्यों के वर्गीकरण एवं व्याख्या की आवश्यकता होती है | यह व्याख्या करने के लिए शोधकर्ता में प्रतिभा होनी चाहिए | एक और शोधकश्रवणीयप्रतिमा के द्वारा तथ्यों की व्याख्या करते हुए निष्कर्ष तक पहुंचता है तथा दूसरी ओर अपने विश्लेषण और निष्कर्ष को अभिव्यक्ति प्रदान करता है | अभिव्यक्ति की भाषा में वह अपनी कार्यशील प्रतिभा से कार्य करता है | अतः विषयानुकूल सरल, स्पष्ट भाषा उसके पास होनी चाहिए|

अतः शोधकर्ता एक विशेष गुण की ओर ध्यान आकृष्ट करके बात समाप्त करते हैं |शोधकर्ता में कृतज्ञता ज्ञापन का गुण होना चाहिए क्योंकि भारतीय परंपरा में कृतज्ञता ज्ञापन का महत्व गुरु - शिष्य परंपरा का अभिन्न अंग माना जाता है|

४.७ सारांश

इस इकाई को पढने के बाद विद्यार्थीयों ने निम्नलिखित विषयों की जानकारी प्राप्त की है |

१. अनुसन्धान एवं आलोचना के परस्पर सम्बन्धों से अवगत हुए |

२. अनुसन्धान एवं आलोचना के साम्य – वैषम्य से परिचित हुए |

३. अनुसंधाता के गुणों /अहर्ताओं से विद्यार्थी परिचित हुए |

४.८ लघुत्तरी प्रश्न

१. आलोचना कार्य के सोपान लिखिए|
२. अनुसंधान की मुख्य दिशाएं कितनीहै ?
३. मेथ्यु अर्नाल्ड ने गुण ग्राहक वृत्ति को क्यामाना है?

४.९ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. अनुसन्धान और आलोचना में परस्पर सम्बन्ध का वर्णन कीजिए |
२. अनुसन्धान और आलोचना में साम्य को विशद कीजिए |
३. अनुसन्धान और आलोचना वैषम्य को उल्लेखित करें |
४. अनुसंधाता की अहर्ताएँ एवं गुणो का विवेचन कीजिए |

४.१० संदर्भ ग्रन्थ

१. शोध स्वरूप एवं मानक व्यावहारिक कार्य विधि
२. देरिदा विखंडन की सैद्धांतिकी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
३. शोधस्वरूप मानक कार्यविधि

✞✞✞✞

५

अनुसंधान प्रविधि

इकाई की रूपरेखा :

५.१ इकाई का उद्देश्य

५.२ प्रस्तावना

५.३ अनुसंधान प्रविधि

५.३.१ ऐतिहासिक प्रविधि

५.३.२ साहित्यशास्त्रीय प्रविधि

५.३.३ मनोवैज्ञानिक प्रविधि

५.३.४ समाजशास्त्रीय प्रविधि

५.३.५ भाषाशास्त्रीय प्रविधि

५.४ सारांश

५.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

५.६ लघुत्तरी प्रश्न

५.७ सन्दर्भ ग्रन्थ

५.१ इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत सम्मिलित की गई विषयवस्तु के अध्ययन से अध्ययनकर्ता को निम्नलिखित जानकारियाँ देने का उद्देश्य निहित हैं -

अ) अनुसंधान प्रविधि के सम्यक अनुसरण और उपयोग से किसी शोध कार्य को पूरी दक्षता के साथ संपन्न करानाहै |

ब) अनुसंधान प्रविधि के विभिन्न रूपों की जानकारी देना |

५.२ प्रस्तावना

अनुसंधान प्रविधि अनुसंधान का तकनीकी पक्ष है, जो अनुसंधित्सु (शोधकर्ता) की प्रतिभा से जुड़कर अनुसंधान का अंतरवर्ती तत्त्व बन जाता है | वास्तव में अनुसन्धान प्रविधि कोई बाहरी या विजातीय तत्व नहीं है | वरन वह सदियों के अनुसन्धान अनुभव और मानक शोध - प्रबंधो के भीतर से ही विकसित हुआ है | जो अनुसंधान प्रविधि वर्षों के शोध अनुभव के भीतर उपजी है, उसमें वर्तमान शोध क्रिया के भीतर प्रवेश पाने और उसके स्वरूप को अनुशासित करने की नैसर्गिक क्षमता होती है | प्रविधि विगत अनुभवों से अर्जित तकनीकों

के तार्किक संयोजन से विकसित वह तंत्र है, जिसके सम्यक अनुसरण उपयोग से किसी कार्य को पूरी दक्षता और सफलता के साथ सम्पन्न करने में सहायता मिलती है | वस्तुत: अनुसंधान प्रविधि ही अनुसंधान के स्वरूप को नियंत्रित और अनुशासित करनेवाला शोधतंत्र शास्त्र है | मानक अनुसंधान प्रविधि या शोधशास्त्र के व्यावहारिक उपयोग से शोधक की दक्षता में वृद्धि होती है, शोध-कार्य स्तरीय और मानक रूप ग्रहण करता है, तथा उसमें अंतर्गठण से प्रबन्धात्मकता आती है |

५.३ अनुसंधान प्रविधि

अनुसंधान प्रविधि में तकनीकों के मानकीकरण की प्रेरणा निहित रहती है, इसीलिए स्वयं अनुसंधान प्रविधि भी विकास के कतिपय सोपानों को पार करके मानक रूप ग्रहण करने की दिशा में प्रवृत्त रहती है | यह सचेत, गत्वर,विकासोन्मुख शोध क्रिया से जन्म लेती है और फिर सचेत शोध-व्यापार को दिशा, दृष्टि और गति प्रदान करती हैं | अनुसंधान का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हैं | प्रत्येक अनुसंधान कार्य सामान्यत: सत्य की खोज, तथ्यों का अन्वेषण और निष्कर्ष स्थापना का अनुष्ठान हैं | इस अनुष्ठान की सिद्धि जिन पद्धतियों से होती हैं | उन्हें अनुसंधान की प्रविधि या पद्धतियाँ कहा जाता हैं | विषय का स्वरूप एवं शोध-विषय के अनुसार अनुसंधान की निम्न प्रविधियाँ कल्पित की गयी हैं |

५.३.१ ऐतिहासिक प्रविधि

मानव जीवन में इतिहास का एक विशेष महत्त्व हैं | मनुष्य का समस्त कार्य-व्यापार इतिहास से जुड़ा रहता हैं | ऐतिहासिक तथ्यों का सम्बन्ध किसी घटना, किसी देश, समाज तथा देश और समाज की सांस्कृतिक और राजनीतिक स्थितियाँ, लेखक अथवा आश्रयदाता, संरक्षक की जीवनी अथवा किसी भावात्मक और विचारात्मक परम्परा के विकास से होता हैं | प्रत्येक विषय वस्तु का अपना इतिहास होता हैं | इस दृष्टि से ऐतिहासिक ज्ञान के बिना किसी भी साहित्य का अनुसंधान असंभव हैं | अत: ऐतिहासिक प्रविधि अनुसंधान की एक महत्त्वपूर्ण पद्धति हैं | इस प्रकार के अनुसंधान के अन्तर्गत ऐतिहासिक तथा पौराणिक तथ्यों का अनुसंधान होता हैं | आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इतिहास को ज्ञान की तीसरी आँख कहा हैं | ज्ञान का भण्डार वास्तव में इतिहास होता हैं | वस्तुत: ऐतिहासिक प्रविधि एक अर्थ में इतिहास दर्शन हैं | प्रत्येक विषय का कालक्रम से अध्ययन, तात्त्विक विवेचन, विश्लेषण ऐतिहासिक अनुसंधान प्रविधि कहलाती हैं |

ऐतिहासिक शोध-प्रविधि के अन्तर्गत साहित्यकार, साहित्य, साहित्यिकविधा, साहित्यशास्त्र, भाषा, लिपि, छन्द, व्याकरण आदि का इतिहासपरक अध्ययन किया जाता हैं | इतिहास और साहित्य शोध के सन्दर्भ में डॉ. तिलकसिंह का कथन उल्लेखनीय हैं - ' साहित्य युग सापेक्ष जीवनमूल्यों की भावमयी अभिव्यक्ति हैं | जीवन और जगत का विकास साहित्य का विकास हैं | साहित्य विकास विभिन्न सोपानों को स्पष्ट करना ऐतिहासिक शोध का अध्ययन क्षेत्र हैं | किसी एक साहित्यिक कृति अथवा एकाधिक साहित्यिक कृतियों का काल के विभिन्न बिंदुओं पर मुल्यांकन करना ऐतिहासिक शोध कहलाता हैं | प्रत्येक युग का साहित्य एक दीर्घकालीन विकास परम्परा का परिणाम हैं |" ऐतिहासिक अनुसंधान प्रविधि में

तथ्यों का प्रकाशन होता हैं, किन्तु यह प्रविधि तथ्यों का केवल प्रकाशन ही नहीं करती, अपितु उनका विवेचन, विश्लेषण तथा मूल्यांकन को आधार भी प्रदान करती हैं।

ऐतिहासिक अनुसंधान प्रविधि के अन्तर्गत साहित्यिक अनुसंधान को गंभीरता और विवेकपूर्ण वस्तुपरक तथ्यों के साथ-साथ काल के अनुरूप परिवर्तित विकसित होती हुई साहित्य में निहित मानव चेतना तथा युग-चेतना के सन्दर्भ को लेकर चिन्तन लेखन करना पड़ता हैं। अन्त: साक्ष्य तथा बाह्यसाक्षय के द्वारा प्राचीन साहित्यकारों के जीवनकाल निर्धारण साहित्य का इतिहास लेखन, अथवा किसी साहित्यविधा का उद्भव और विकास आदि एतिहासिक अनुसंधान प्रविधि के अन्तर्गत आ जाते हैं। किसी देश और समाज की सांस्कृतिक, राजनीतिक परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक तथ्य साहित्यिक कृतियों में देखे जा सकते हैं। किसी एक लेखक के पूर्वापार तथा समकालीन समय, समाज, और उसकी जीवनी का परिचय उसी की कृतियों से संकलित किये जा सकते हैं, तथा लेखक के समकालीन एवं परावर्ती अन्य प्रमाणों से भी जाने जा सकते हैं, इसे अन्त: साक्ष्य कहते हैं। बाह्य साक्ष्य के अन्तर्गत ग्रन्थ, शिलालेख, ताम्रलेख, पट्ट परवाने आदि अनेक प्रमाण सम्मिलित हैं। किसी काव्य कृति में ऐतिहासिक तथ्यों का विवरणात्मक आकलन तथा प्रमाणित ऐतिहासिक तथ्यों के आधारपर बाह्य-कृतियों का अध्ययन में दोनों ही ऐतिहासिक अनुसंधान प्रविधि केअंग हैं। किसी काव्य कृति में कितना इतिहास हैं और कितनी कल्पना इसका निर्णय भी इस प्रविधि का क्षेत्र हैं। ऐतिहासिक अनुसंधान प्रविधि का प्रयोग करके जो शोध ग्रन्थ लिखे गये हैं। उनमें निम्नलिखित ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं -

अ) हिन्दी साहित्य का आलोचानात्मक इतिहास - डॉ. रामकुमार वर्मा

ब) हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त

क) हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास - डॉ. भगीरथ मिश्र

ड) हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास - डॉ. दशरथ ओझा

इ) हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

इस प्रविधि में ज्ञान क्षेत्र के प्रत्येक विषय का कालक्रमिक विवेचन, विश्लेषण किया जाता हैं। कालखण्ड का ऐतिहासिक तथ्यों के आधारपर अध्ययन किया जाता हैं। इसमें प्रथमतः अध्ययन की कालावधि निश्चित की जाती हैं। अध्ययन की सीमा निर्धारित होने के कारण अनुसंधान में गंभीरता पूर्णत: तथा एकरूपता आ जाती हैं। अत: ऐतिहासिक अनुसंधान प्रविधि में कालक्रम का महत्त्व सर्वाधिक हैं। किसी भी साहित्य का या विधा का या विचारधारा का उद्भव, विकास कैसे हुआ यह कालक्रम की दृष्टि से देखा जाता हैं। कालक्रम के अन्तर्गत तिथियों का क्रम, रचनाकार का समय, उनकी कृतियों का साम्य आदि को विशेष महत्त्व दिया जाता हैं।

५.३.२ साहित्यशास्त्रीय प्रविधि -

साहित्यिक शोध प्रविधि का स्वरूप वैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय शोध की अपेक्षा अधिक जटिल हैं। साहित्यशास्त्र की स्वरूपगत जटिलता साहित्यशास्त्रीय शोध की जटिलता का मूल कारण है जहाँ विज्ञान का शोध भौतिक हैं, समाजशास्त्रों का बोध वैचारिक हैं, वहाँ

साहित्यशास्त्र का बोध भौतिकता और वैचारिकता से आगे अनुभूतिपरक हैं, जिसमें विचार या चिन्तन के साथ भावना और कल्पना का भी सामंजस्य रहता हैं | साहित्यशास्त्र के जटिल सृजनात्मक स्वरूप के कारण साहित्यशास्त्रीय शोध की अभी तक कोई सुनिश्चित पद्धति विकसित नहीं हो सकी हैं और न ही इसकी कोई सम्भावना हैं, क्योंकि साहित्य का सृजनात्मक स्वरूप किसी प्रकार की यांत्रिकता को स्वीकार नहीं कर सकता | इस सन्दर्भ में डॉ. नगेन्द्र का कथन महत्त्वपूर्ण हैं | वे लिखते हैं - "साहित्य में आत्मा की प्रधानता हैं | अत: साहित्य के अध्ययन में आत्मकथन का बहिष्कार कर एकान्त वस्तुपरक अध्ययन की सम्भावना नहीं हैं | इस प्रकार का अध्ययन वस्तु से उलझकर क्लिष्ठ हो जायेगा, क्योंकि साहित्य तत्वत: वस्तु नहीं हैं, अनुभूती हैं |" इसीलिए साहित्यशास्त्रीय शोध के लिए अनुसंधाता में ज्ञान वृत्ति के साथ ही सृजन, सौंदर्य और संस्कृति को पोषक 'भाव वृत्ति' का समुचित संयोग भी अभिष्ट हैं | अनुसंधान में बौद्धिक विश्लेषण क्षमता के साथ ही सौंदर्यग्राही सृजनात्मक प्रतिभा का होना भी आवश्यक हैं | अत: साहित्यशास्त्रीय शोध के लिए भाव और अभिव्यक्ति से सम्बन्धित काव्यशास्त्रीय अथवा साहित्यिक विधियाँ ही उपयुक्त हैं | सांख्यिकीय, प्रश्नावली, साक्षात्कार, सर्वेक्षण आदि विधियाँ विशेष स्थितियों में अनुषांगिक रूप में ही उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं |

साहित्य न तो प्रत्यक्षत: ज्ञान हैं और न ही विज्ञान, वह तो एक कला हैं, जिसमें ज्ञान-विज्ञान अपनी स्वरूपगत सीमाओं को त्यागकर भावना और कल्पना के साँचे में ढलकर संवेदना - संचलित रूप में अभिव्यक्त होते हैं | जहाँ विज्ञान और समाजशास्त्रीयों का जगत से सीधा सम्बन्ध होता हैं | वहाँ साहित्य वास्तविक जगत के समानान्तर अपने से जगत की सृष्टि करता हैं | आचार्य भामह के अनुसार कवि को अपार काव्य-संसार का स्पष्ट वक्ता होता हैं | ऐसी स्थिति में विज्ञान और समाजशास्त्र जगत से प्रत्यक्ष सम्बन्ध के कारण समाज के लिए उपयोगी होते हैं | किन्तु साहित्य अपने सृजनात्मक या कलात्मक स्वरूप के कारण न तो विज्ञान के समान कोई उपयोगी अविष्कार करता हैं और न समाजशास्त्रीयों के समान सामाजिक व्यवस्था को प्रत्यक्षत: प्रभावित या निर्धारित करता हैं | साहित्य का कलात्मक प्रभाव भावात्मक होता हैं | उसका लक्ष्य हैं - लोकरंजन तथा लोक-मंगल| साहित्यशास्त्रीय अनुसंधान में भी लोक-मंगल की प्रेरणा निहित रहती हैं | अनुसंधाता अनेक बार ऐसे तथ्यों या तत्त्वों की खोज करता हैं, जिनसे साम्प्रदायिक, धार्मिक, राजनीतिक संकीर्णताओं और भेदभावों के मूलत: की प्रेरणा मिलती हैं और भावनात्मक एकता और साम्प्रदायिक सामंजस्य का पथ प्रशस्त होता हैं | डॉ. मलिक मुहम्मद का "वैष्णव भक्ति आंदोलन का अध्ययन, डॉ. निजामउद्दीन का "हिन्दी में राम भक्ति सम्बन्धी महाकाव्यों का अध्ययन, वन्दना शर्मा का मध्यकालीन सन्त काव्य में प्रेम तत्त्व तथा ब्रजभूषणशर्मा का मध्यकालीन हिन्दी संत साहित्य में मानवतावादी विचारधारा इसी प्रकार के शोधात्मक प्रयास हैं | डॉ. भ. ह. राजूरकर ने अपने लेख साहित्यिक अनुसंधान में साहित्यिक अनुसंधान का लक्ष्य मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा, साहित्य सृजन के अनुशासन को पहचानना और सांस्कृतिक क्षेत्र का उन्नयन माना हैं |

मुख्य रूप से साहित्यशास्त्रीय अनुसंधान अपनी प्रकृति और विभिन्न रूपात्मक स्वरुपों के कारण प्रकाशित, हस्तलिखित और मौखिक रूप में ही मिलता हैं | यह सम्पूर्ण साहित्य रागात्मक साहित्य और लोक साहित्य को भिन्न कोटियों में विद्यमान रहे हैं | साहित्य की पद्य एवं गद्य रूपों की प्रत्येक विधा रागात्मक साहित्य का अगाध भण्डार हैं |

साहित्यशास्त्रीय शोध मूलत: इसी रागात्मक साहित्य की शुद्ध प्रक्रिया होता हैं | डॉ. तिलक सिंह ने साहित्यिक शोध को चार भागों में विभाजित किया हैं - जीवन वृत्तीय शोध, प्रवृत्तिगत शोध, प्रभावगत शोध और आलोचनात्मक शोध |

इस प्रकार साहित्यशास्त्रीय अनुसंधान प्रविधि शोध की परिधि में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता हैं | वर्तमान समय में साहित्यशास्त्रीय अनुसंधान के क्षेत्र में नित नये प्रयोग हो रहे हैं | पिछले कुछ एक वर्षों में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, किसान विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श, वृद्ध विमर्श,पर्यावरण विमर्श, आतंकवाद और नक्सलवाद जैसे विषयों पर शोध कार्य हो रहे हैं|

५.३.३ मनोवैज्ञानिक प्रविधि -

साहित्य मानव मन की कलात्मक अभिव्यक्ति है और उस अभिव्यक्ति का मन के स्तर पर किया गया विश्लेषण' मनोवैज्ञानिक अनुसंधान कहलाता हैं | मनोविज्ञान अंग्रेजी भाषा के 'साइकोलॉजी' शब्द का हिन्दी रूपान्तर हैं | 'साइकोलॉजी शब्द साइके (Psyche) तथा लोगोस (logos) शब्दों से मिलकर बना हैं | साइके का अर्थ हैं 'मन' और लोगोस का अर्थ हैं 'नियम' | अत: मन का नियम अर्थात 'मन का सैद्धान्तिक रूप' मनोविज्ञान कहलाता हैं | साइकोलॉजी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सत्रहवी शती में हुआ | आस्ट्रिया के मनोरोग विशेषज्ञ और मनोविश्लेषणशास्त्री सिगमण्ड फायड़ ने मनोविश्लेषण शास्त्र के रूप में मनोवैज्ञानिक चिन्तन को उत्कर्ष पर पहुँचाया | फ्रायड़ ने मन (Psyche) की तीन परतों-अचेतन (Unconscious) अवचेतन (Sub-couscious) तथा चेतन (Conscious) का निरुपण किया हैं | अचेतन मन असंख्य कामेच्छाओं का रहस्यमय, असंयत, उन्मुक्त भंडार हैं | अव चेतन मन अचेतन और चेतना के मध्य में सीमान्त क्षेत्र हैं | इसपर अचेतन मन और चेतन मन-दोनों की ओर से आक्रमण होते रहते हैं | यही वह क्षेत्र हैं, जहाँ अचेतन मन की उन्मुक्त कामेच्छाएँ (Sexual desires) बलपूर्वक घुस पैठ करती हैं | यही चेतन मन उन घुसपैठ करनेवाली उच्छृन्खल ल और मनचली कामेच्छाओं पर धावा बोल देता हैं और उन्हें अनुशासित करके सामाजिक मर्यादा का पाठ पढ़ाता हैं | यदि चेतन मन अचेतन मन की इन असंयत कामेच्छाओं पर अधिक हावी और प्रभावी होकर उन्हें दमित कर देता हैं, तो व्यक्ति-मन में अनेक कुण्ठाओं को जन्म देती हैं और इन दमित वासनाओं के कारण व्यक्ति मनोरोगी या विक्षिप्त हो जाता हैं | कई बार ये हठी युक्त कामेच्छाएँ चेतन मन की तनिक आँखे लगते ही स्वप्न में अपने मुक्त रूप में प्रकट होती हैं | इसीलिए स्वप्न - विश्लेषण (Dream-Analysis) के माध्यम से दमित कामेच्छाओं का पता लगाकर मनोरोगियों की चिकित्सा की जाती हैं | संकोच, लज्जा, तनाव, लोक निन्दा से बचने के उद्देश्य से व्यक्ति अपनी दमित कामेच्छाओं को भिन्न स्तर पर रूप बदलकर कविता, कला, भक्ति, रहस्यानुभूति, चुटकुले आदि के माध्यम से व्यक्त करने का अनूठा मार्ग खोजता हैं | कामेच्छाओं को सामाजिक दृष्टि से स्वीकार्य रूप में भिन्न स्तर और माध्यम से व्यक्त करना उदात्तीकरण (Sublimation) कहलाता हैं |

मनुष्य का मन भावों और विचारों से पोषित रहता हैं और इन्हीं से साहित्य में अनुभूति पक्ष का निर्माण होता हैं | साहित्यकार अपने मन की अभिव्यक्ति को जब किसी रचना का रूप प्रदान करता हैं तो अनुभूति पक्ष उस अभिव्यक्ति पक्ष को अनुशासन के दायरे में बाँधकर

संचालित करता हैं | इस प्रकार मनुष्य के मन के भाव और संवेदनाएँ उनकी रचना में अन्तर्निहित रहते हैं | मनोवैज्ञानिक अनुसंधान साहित्यकार के मन उसकी संरचना और उसके क्रिया - व्यापारों का अध्ययन करता हैं | इस अध्ययन के अन्तर्गत साहित्यकार और तद्युगीनमानव के व्यवहार और उसके भविष्य की स्थिति का पता लगाया जाता हैं | मनुष्य के सहज और असहज क्रिया-व्यापारों का सम्बन्ध उसके मन से ही सम्बद्ध रहता हैं | अनुसंधाता उन सहज और असहज व्यापारों द्वारा मनुष्य की असहज वृत्तियों के कारणों और उनके नियंत्रण के समाधान को विश्लेषित करता हैं | व्यक्ति किसी विचार की ओर उन्मुख क्यों हुआ ?" यह एक सामान्य व्यक्ति के लिए सामान्य प्रश्न हो सकता हैं किन्तु मनोवैज्ञानिक के लिए यह उस व्यक्ति के मन की ग्रन्थियों को समझने और परखने का एक विशेष आधार बन सकता हैं | साहित्य सृजन से पूर्व साहित्यकार के मन की कौन सी वृत्ति ने उसे अपनी रचना को लिखने के लिए प्रयोगकिया और क्यों ? ऐसे प्रश्न आलोचना के नहीं वरन शोध के विषय होते हैं | जिसका उत्तर मनोविज्ञान का पूर्ण ज्ञान रखनेवाला व्यक्ति ही दे सकता हैं |

रचनाकार अपनी कृति को दो रूपों में अभिव्यक्त करता हैं | एक जहाँ वह स्वयं ही विद्यमान रहता हैं और दुसरा जहाँ वह समाज की बात करते हुए भी अपने निजी भावों को स्थान देता हैं | व्यक्तिवादी रचनाओं में रचनाकार के निजी भावों की अभिव्यक्ति होती हैं किन्तु जहाँ वह समष्टि के माध्यम से व्यष्टि की बात करता हैं, वहाँ वह अपने भावों को किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से व्यक्त करता हैं | उक्त दोनों प्रकार की रचनाओं में रचनाकार की भावाभिव्यक्ति का शोधपरक अध्ययन मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के द्वारा ही संभव हैं |

मानव मन तो वृत्तियों का भण्डार हैं | अहंवाद, राग, द्वेष, घृणा, वीरता, श्रृंगार, वासना, प्रेम, मानवता आदि ढेरों वृत्तियों के मन पर अधिकार जमाया हुआ हैं | मन की इन वृत्तियों का पूर्ण ज्ञानी मनोवैज्ञानिक आधारपर शोध कार्य कर सकता हैं | विगत कुछ वर्षों में मनोवैज्ञानिक आधारपर वृत्तीयों पर किये गये शोधों में शोधकर्ता ने मानव मन की वृत्तियों या ग्रंथियों के विकारों, आवेगों, संवेगों, तनाव, घुटन, कुण्ठा आदि के कारणों का अध्ययन करते हुए उसे विश्लेषित किया हैं | अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी का तुलसी के काव्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, डॉ. राम कुलकर्णी का मैथिलीशरण गुप्त के नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, डॉ. मनिषा ठक्कर का हिन्दी के मनोविश्लेषणवादी उपन्यास, मोहन राकेश के साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, हृदयेशकुमार पालीवाल का हिन्दी आलोचना और मनोविश्लेषण इसी प्रकार के शोधात्मक प्रयास हैं |

परम्परागत और नवीन वृत्तियों को ध्यान रखकर मनोवैज्ञानिक अनुसंधान को विस्तार दिया जा सकता हैं | आधुनिक युग में नवीन वृत्तियों पर तो अभी अपेक्षित शोधकार्य इस दिशा में शेष हैं | सच तो यह है कि मनुष्य का आत्म तत्व साहित्य में अभिव्यक्त होकर साहित्य की आत्मा बन जाता हैं और उस आत्मा का अनुशीलन ही मनोवैज्ञानिक अनुसंधान का कार्यहैं |

५.३.४ समाजशास्त्रीय प्रविधि

साहित्य समाज का दर्पण होता हैं | साहित्य और समाज के सम्बन्धों की अविच्छिन्न गतिशील परम्परा को कदापि नकारा नहीं जा सकता | यह सम्बन्ध तब से हैं जब से साहित्य का जन्म हुआ | साहित्य और समाज के इन सम्बन्धों की ध्वनि साहित्यिक कृतियों में

गुँजायमान रहती हैं | साहित्य में विद्यमान सम्बन्धों की इस ध्वनि का अर्थात सामाजिक तत्त्वों का वैज्ञानिक अनुशीलन ही 'समाजशास्त्रीय अनुसंधान का कार्य हैं | डॉ. वैजनाथ सिंहल के मतानुसार "जब भी किसी क्षेत्र विशेष के अध्ययन के लिए कुछ सिद्धान्त निश्चित हो जाते हैं, तब इस प्रकार की सिद्धान्तावली को उस क्षेत्र शास्त्रकी संज्ञा दी जाती हैं | अत: समाजशास्त्र से स्वत: ही यह अर्थ ध्वनित होता हैं कि यह वह शास्त्र हैं जिसमें ऐसी सिद्धान्तावली रहती हैं जिसके आधार पर समाज का अध्ययन किया जा सकता हैं |

समाजशास्त्र समाज के अध्ययन की वैज्ञानिक प्रक्रिया हैं, जिसका कार्य समाज के अस्तित्व में आने के कारणों से लेकर, उसके विकसित रूपों, मान्यताओं, संस्थाओं तथा सम्बन्ध आदि के विविध पहलुओं का गहराई से अध्ययन करना हैं | साहित्य के समाजशास्त्रीय अनुसंधान के दौरान शोधकर्ता को दो भिन्न दृष्टियों का सहारा लेना जरुरी होता हैं | एक तो साहित्य का समाज का दर्पण मानकर समाज की पूरी बनावट की रूपरेखा स्पष्ट करनी होती हैं | जिसमें सामाजिक संरचना का स्वरूप और उसके निर्माण के सभी पक्षों को उद्घाटित किया जा सके | यह दृष्टि पूर्णत: समाजशास्त्रीय होने के कारण कुछ अधिक जटिल होती हैं किन्तु इसी के आधारपर ही शोधकर्ता सामाजिक रीति परम्पराओं और मूल्यों की प्रकृति को पूरी तरह से सामने लाने में सक्षम होता हैं | वास्तव में साहित्यिक रचनाओं में अन्तर्भूत मूल्य समाज की भावात्मक और जीवन शैली के प्रामाणिक रूप होते हैं | इस दृष्टि से किया गया शोध ऐतिहासिक दृष्टि से भी उपयोगी होता हैं |

दूसरी दृष्टि के अन्तर्गत शोधकर्ता को रचना के उस पक्ष की ओर ध्यान देना अपेक्षित है जहाँ रचनाकार अभीसित समाज की काल्पनिक रूपरेखा का निर्माण करता हैं | क्योंकि समाजशास्त्र के सिद्धांत कालदेश के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं | इसीलिए साहित्यकार की सामाजिक उपादेयता की दृष्टि से भविष्य को मूल्यवादी सत्ता के स्वरूप का अध्ययन भी समजशास्त्रीय अनुसंधान की परिधि में ही आयेगा |

इन दोनों दृष्टियों में स्वयं को सिद्धहस्त बनने के लिए शोधकर्ता को रचनाकार के तत्कालीन समाज की पूर्ण स्थितिका सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक - ज्ञान होना अनिवार्य हैं | उस युग के रीति - रिवाज, परम्परायें, सामाजिक मान्यताएँ, परिवेशगत स्थिति, सामाजिक सम्बन्धों का स्वरूप, संस्थाओं का महत्त्व आदि का अध्ययन और पूर्ण विश्लेषण ही उसे समाजशास्त्रीय सैद्धांन्तिक रूपरेखा को समझने में दृष्टि प्रदान कर सकता हैं |

समाजशास्त्रीय अनुसंधान करते समय शोधकर्ता को सर्वप्रथम अपना सैद्धान्तिक आधार निर्मित करना चाहिए | समाज और समाजशास्त्रीय को परिभाषित करना शोध की प्रथम आवश्यकता हैं | व्यक्ति को समाज का केन्द्र मानकर वर्तमान सन्दर्भ में व्यक्ति - जीवन के परिवेश तथा सम्बन्ध तनावों-दबावों का निरुपण आवश्यक हैं | परिवार को सामाजिक जीवन का प्रमुख घटक मानते हुए दाम्पत्य जीवन तथा अन्य पारिवारिक जीवन सम्बन्धो के स्वरूप पर विचार करना आवश्यक हैं | उसके बाद सामाजिक जीवन का धर्म, जाति, वर्ग आदि से निर्मित संरचना के स्वरूप का अध्ययन भी अभीष्ट हैं | इसके बाद आर्थिक जीवन के सम्बन्ध विविध धन्धों, व्यवसायों, उद्योगधन्धो तथा उनसे जुडी समस्याओं के विविध रूपों पर विचार वांछनीय हैं | उसके पश्चात राजनीतिक पक्ष और उससे सम्बन्ध

समस्यात्मक पक्षों को लेना प्रासंगिक हैं | इसके बाद शिक्षा, संस्कृति, कला साहित्य, चलचित्र जगत, आदि से सम्बद्ध नकारात्मक-सकारात्मक पक्षों को ग्रहण किया जा सकता हैं | सैद्धांतिक अध्ययन के विभिन्न घटकों - वैंयक्तिक जीवन, पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन, शैक्षिक और सांस्कृतिक जीवन को केन्द्र में रखकर अध्येय कृति से तथ्यों का अध्यायगत आधार पर वर्गीकृत रूप में संकलन करना चाहिए | अध्यायों के लेखन में सम्बद्ध तथ्यों का विवेकपूर्ण विश्लेषण शोधकर्ता की मनीषा और अंर्तदृष्टी का स्तर ही शोध प्रबन्ध की प्रबंधात्माकता के स्तर को निर्धारित करनेवाला आधारभूत तत्व हैं| शरगुलाल का मध्ययुगीन कृष्णकाव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, विमला मेहता का निर्गुण कवियों के सामाजिक आदर्श, राजपाल शर्मा का हिन्दी वीर काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, सुरेश ढींगरा का स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक में परिवार विघटन, रविन्द्रनाथ का आधुनिक कविता में सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन, मनमोहन भारद्वाज का आधुनिक हिन्दी मराठी नाटकों में युग बोध, चन्द्रकला का साठोत्तरी हिन्दी नाटकों में सामाजिक द्वंद्व, नीलिमा चौहाण का हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना का बदलता स्वरूप, संजीव सिंह नेगी का रीतिकालीन नीतिकाव्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन, शिवकुमार का रीतिकालीन संत कवियों की सामाजिक चेतना एवं सुभाषचन्द्र का रामदरश मिश्र के उपन्यासों में सामाजिक चेतना इसीप्रकार के शोधात्मक प्रयास हैं |

आधुनिक युग में जहाँ उत्तर आधुनिकता के दौर के चलते मनुष्य महानगरीय सभ्यता पथरी्ले - एहसासों के नीचे दबकर घुटन, संन्यास, तणाव, कुण्ठा, अनास्था आदि से घि रकर मूल्यविघटित संस्कृति को जन्म दे रहा हैं, इन समस्त कारणों को खोजने के लिए समाजशास्त्रीय अनुसंधान की पद्धति एक आदर्श पध्दति हैं | इसीलिए इस शोध पद्धति पर वर्तमान में कितना अधिक कार्य होगा और सामाजिक विधान की अनास्था इतनी ही कम होती जाएगी, उसका हमें विश्वास हैं |

५.५.५ भाषाशास्त्रीय प्रविधि -

भाषा और साहित्य का सम्बन्ध सदियों से निर्विवाद रूप से बना रहा हैं | भाषा के माध्यम से ही साहित्य से ही साहित्य को अभिव्यक्ति मिलती हैं | भाषा का सम्बन्ध साहित्य के कहीं अधिक समाज से हैं | प्रत्येक भाषा अपने आरम्भिक दौर के बोली रूप में ही थी | बोली से भाषा तक के विकास में सामाजिकों का योगदान निर्विवाद रहता है | लेकिन सामान्य भाषा और साहित्यिक भाषा में भी पर्याप्त अंतर होता है | साहित्यिक भाषा की संरचना का विश्लेषण रचनाकार की मानसिक संरचना का पूर्ण ज्ञान देता है |

भाषा केवल ध्वनियों या शब्दों का संग्रह मात्र नहीं है | वरन वह परिस्थितियों मन:स्थितियों के सम्पर्क से उदित सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना का ध्वन्यात्मक सम्पूर्तन है | किसी क्षेत्र की भाषिक व्यवस्था में वहाँ की लोक संस्कृति साकार होती है | लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति क्षेत्रीय भाषा में होती है तो विश्व व्यवस्था के निरूपक विविध ज्ञान विज्ञानों की अभिव्यक्ति शास्त्रीय या पारिभाषिक (तकनीकी) भाषा में होती है | अतः अनेक स्तरों पर भाषा के अध्ययन की आवश्यकता निरंतर बनी रहती है |

भाषा की संरचना और उसके व्यावहारिक रूप के शोध के लिए भाषा विज्ञान के प्रमुख आधार रूपों को स्वीकार किया जा सकता है | इस क्षेत्र में शास्त्रीय दृष्टि में भाषा की संरचना

में सहायक शाखाएं ध्वनि विज्ञान, शब्द विज्ञान, पद विज्ञान और वाक्य विज्ञान तथा उसे व्यावहारिक रूप देने वाली शाखाएँ अर्थ विज्ञान तथा शैली विज्ञान आदि का स्थान महत्वपूर्ण है | इन महत्वपूर्ण शाखाओं को आधार बनाकर साहित्यिक कृतियों की भाषा का चार भिन्न-भिन्न पद्धतियोंद्वारा अध्ययन किया जा सकता है | भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की ये चार प्रमुख पद्धतियां है - वर्णनात्मक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक एवं प्रायोगिक

अ) वर्णनात्मक - इस पद्धति के अन्तर्गत भाषा के रचना-प्रक्रिया का समकालिक विश्लेषण करते हुए उसे विवेचित किया जाता है |

ब) ऐतिहासिक - इस पद्धति में शब्दों तथा भाषा दोनों की ही विकास श्रृंखला का अन्वेषण किया जाता है |

क) तुलनात्मक - भाषा की संरचना अपनी समकालीन भाषाओं से प्रभावित रहती है | इस पद्धति में किसी एक भाषा का उस काल की अथवा वर्तमान युग की भाषाओं के तुलनात्मक आधार पर विश्लेषण किया जाता है |

ड) प्रयोगात्मक - इस पद्धति में भाषा के उपकरणों, शब्दकोशों, लिपि सुधार के आधारों आदि पर गहराई से विचार किया जाता है |

भाषा वैज्ञानिक अनुसंधान में दूसरी भाषाओं से हिंदी भाषा में आये शब्दों के स्त्रोतों का अध्ययन भी अपेक्षित है | इस प्रकार के शोध में शब्दों को उनके साहित्यिक संस्थाओं की सौष्ठव दृष्टि से भी परखा जा सकता है किन्तु उन विशिष्ट शब्दों के सौष्ठव के कारणों और रचनाकार की कृति में उसके विशिष्ट अर्थों का अध्ययन भी इसमें आवश्यक है | यह सच है कि जीवित भाषाओं को ही शोध के क्षेत्र में अधिक महत्व दिया जाता है | लेकिन हम इस सत्य को भी नकार नहीं सकते कि वर्तमान समय की जीवित भाषाओं का इतिहास किन्ही रूपों में मृत-भाषाओं के साथ भी सम्बद्ध है | यदि उनकी संरचनात्मकता पर प्रकाश डालने के लिए मृत भाषाओं को भाषा शास्त्रीय अनुसंधान का आधार बना लिया जाए तो निश्चित रूप से इतिहास की परतों के पीछे का यथार्थ कुछ नए अध्याय भी गढ़ सकता है |

५.६ सारांश

हिंदी का शोध भण्डार अपने विभिन्न प्रकारों में किये जाने वाले शोधकार्य से इतना व्यापक है किन्तु अब भी शोध की विषय श्रृंखला इतनी लंम्बी है कि वर्षों तक उसे गिना नहीं जा सकता | नित नये साहित्यिक मानदण्ड, नये लेखक और उनकी कृतियाँ, नये विमर्श आदि शोध के क्षेत्र को व्यापकता प्रदान कर रहे हैं | शोध की बदलती परिस्थितियाँ और कम्प्यूटर क्रांति ने शोध की सामग्री को शोधकर्ता के निकट ला दिया है | किंतु शोधकर्ता की विचार चिन्तन की शक्ति का दायरा अब भी इतना विशाल है कि उनकी खोज की प्रवृत्ति से उसे नये विषयों पर शोध के लिए उत्सुक कर रही है |

५.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) अनुसंधान के प्रभेदों पर प्रकाश डालिए |

२) साहित्यिक अनुसंधान का स्वरूप स्पष्ट कीजिए |

३) ऐतिहासिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुसंधान का सामान्य परिचय दीजिए |

४) समाजशास्त्रीय एवं भाषाशास्त्रीय प्रविधि का स्वरूप स्पष्ट कीजिए |

५.८ लघुत्तरी प्रश्न

१) अनुसंधान प्रविधि किसका शास्त्र हैं ?

२) अनुसंधान कार्य किसका अनुष्ठान हैं ?

३) किसने इतिहास को ज्ञान की तीसरी आँख कहा हैं ?

४) किस अनुसंधान प्रविधि में कालक्रम का महत्व सर्वाधिक हैं ?

५) किस प्रकार के शोध के लिए शोधकर्ता में ज्ञान-वृत्ति के साथ भाव-वृत्तिका होना भी आवश्यक हैं ?

६) भामह के अनुसार कवि किसका स्त्रोत होता हैं ?

७) किस अनुसंधान में लोग मंगल की प्रेरणा विहित रहती हैं ?

८) साइकोलॉजी का क्या अर्थ हैं ?

९) अनुसंधान की कौनसी पद्धति आदर्श पद्धति कहलातीहैं ?

१०) भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की कौन सी चार प्रमुख पद्धतियाँ हैं ?

५.६ सन्दर्भ ग्रन्थ

१) अनुसंधान प्रविधि - डॉ. विनय मोहन शर्मा, नेशनल पेपरबैक्स, नई दिल्ली

२) शोध प्रविधि - डॉ. हरिश्चंद्र वर्मा, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, पंचकूल हरियाना

३) हिन्दी अनुसंधान - डॉ. विजयपाल सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

४) अनुसंधान स्वरूप और आयाम - डॉ. उमाकान्त गुप्त, डॉ. ब्रजरतन जोशी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

५) शोध प्रविधि और प्रक्रिया - डॉ. हरीश अरोडा, के. के. पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

✞✞✞✞

६

अनुसंधान प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा :

६.० इकाई का उद्देश्य

६.१ प्रस्तावना

६.२ अनुसंधान प्रक्रिया

६.३ विषय चयन

६.४ अनुसंधान की समस्या

६.५ पूर्ववर्ती संबंधित शोधकार्य का पुनर्निरीक्षण

६.६ अनुसंधान की रूपरेखा

६.७ स्त्रोत एवं सामग्री

६.८ कंप्युटर का भाषिक अनुप्रयोग

६.९ प्रश्नावली निर्माण

६.१० साक्षात्कार

६.११ सामग्री का विवेचन

६.१२ सारांश

६.१३ दीर्घोत्तरी प्रश्न

६.१४ लघुत्तरी प्रश्न

६.१५ सन्दर्भ ग्रन्थ

६.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत सम्मिलित की गई विषयवस्तु के अध्ययन से अध्ययनकर्ता को निम्नलिखित जानकारियाँ देने का उद्देश्य निहित है -

अनुसंधान प्रक्रिया के महत्त्वपूर्ण चरण की जानकारी देना |

अ) अनुसंधान प्रक्रिया के सम्यक अनुसरण से शोध विषय को सुरुचिपूर्ण एवं व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना |

६.१ प्रस्तावना

आवश्यकता शोध की जननी है और शोध विकास की जननी है | मानव जीवन के भौतिक एवं आत्मिक बहुमुखी क्षेत्र में, ज्ञान - विज्ञान तंत्रज्ञान, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान, साहित्य, दर्शन, संस्कृति, कृषिविज्ञान, औषधिविज्ञान, शरीर विज्ञान, जैविक विज्ञान, अर्थनीति, खगोल, भूगोल, भूगर्भ विज्ञान तथा भाषाविज्ञान आदि में जो अद्भुत उन्नति हुई है| वह अनुसन्धान के कारण ही संभव हुई है | ज्ञानात्मकता अनुसंधान की अनिवार्य शर्त है | ज्ञान पिपासा की तृप्ति, सद्विवेक एवं मानव क्षमता का उन्नयन अनुसंधान का मूल लक्ष्य है | ज्ञान के प्रति मानव का आकांक्षापूर्ति, उसकी विवेकशक्ति का विकास और क्षमता की वृद्धि तथा अनेक प्रकार से जीवन की सुख-सुविधाओं का विस्तार अनुसंधान के प्रमुख एवं मौलिक उद्देश्य हैं | जीवन की समृद्धि और मानव के उत्कर्ष में योगदान करने में ही वास्तव में शोध की चरम सार्थकता है | इससे स्पष्ट हो जाता है कि अनुसंधान का लक्ष्य स्वान्तसुखाय के साथ जनहिताय भी है |

६.२ अनुसंधान प्रक्रिया

अनुसंधान प्रक्रिया मे वे सारे तत्व निहित हैं, जिनसे अनुसंधान प्रारम्भ से अन्ततक जुड़ा रहता है | अनुसंधान के लिए एक दृष्टिकोण के साथ ही वह प्रक्रिया भी होती है, जिससे हर अनुसंधानकर्ता को गुजरना पड़ता है | शोध की प्रक्रिया मूलत: वैज्ञानिक है | यह शोध विषय को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने की एक ऐसी विशेष क्रिया है जो कुछ नियमों से बँधी रहती है | इन नियमों की परिधि में रहकर ही शोधार्थी अपने शोधकार्य को उचित रीति से पूर्णता प्रदान कर सकता है | शोध का ढाँचा अनेक चिन्तनपरक एवं बौद्धिक उपकरणों से तैयार होता है | अनुसंधान की प्रक्रिया में शोधकर्ता और निर्देशक दोनों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है | इन्हीं दोनोंकी योग्यता और दृष्टिसे ही शोध को सही दिशा मिलती है | शोधकर्ता और निर्देशक के पश्चात विषय चयन, रूपरेखा निर्माण, सामग्री संकलन, सामग्री विश्लेषण, विषय सूची, भूमिका, प्रबन्ध लेखन आदि शोध प्रक्रिया के महत्त्वपूर्ण चरण है | शोध कार्य से पूर्व शोधकर्ता को अनुसंधान के सैद्धांतिक स्वरूप को समझ लेना आवश्यक होता है |

६.३ विषय चयन

विषय चयन अनुसंधान की आधार शिला है | कोई भी अनुसंधान विषय निर्वाचन के बिना आरम्भ हो ही नहीं सकता, अतएवं शोधकर्ता के सम्मुख शोध का मूलतत्त्व विषय चयन ही होता है | अनुसंधान - विषय का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है, अत: शोधकर्ता को जिस किसी भी विषय में शोधकार्य करना है, उसके विषय चयन में सावधानी बरतना आवश्यक होता है | सर्वप्रथम किसी क्षेत्र से विषय चयन हो यह तय होने के बाद यह देखना आवश्यक है कि विषय पर पहले किसीने उसी रूप में कोई अनुसंधान तो नहीं किया है | अनेक शोध पत्रिकाओं को देखकर भी विषय चयन किया जा सकता है | इसके लिए निर्देशक से भी सलाह - मशवरा करना आवश्यक है | विषय चयन में सर्वप्रथम सामग्री की सुलभता को ध्यान में रखा जाता है | शोधकर्ता को यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि विषय उसकी

अभिरुचि एवं मनोवृत्ति के अनुकूल हो | विश्वविद्यालयों में किए जानेवाले शोधकार्य के लिए चार आधारों पर विषय - चयन की पद्धतियाँ प्रचलित हैं -

क) योजनामूलक पद्धति -

इस पद्धति में विश्वविद्यालय किसी विशेष योजना को आधार बनाकर एक विषय - सूची तैयार करता है और उन विषयों पर शोधार्थियों को शोध कार्य करने के लिए कहा जाता है | इस तरह की शोध पद्धति के निष्कर्ष और परिणाम पूर्व में ही निश्चित होते हैं | यह पद्धति शोधार्थी की अभिरुचि और क्षमताओं को महत्त्व नहीं देती हैं बल्कि योजना ही उसका मूल होता है |

ख) स्वतंत्र वैयक्तिक पद्धति -

इस पद्धति में शोधार्थी स्वयं अपनी रुचि क्षमता को ध्यान में रखकर कुछ विषयों का चयन करता है | इसके लिए वह विभिन्न विद्वानों एवं शोध निर्देशक से विचार - विमर्श करता है और उनसे परामर्श भी लेता है | उसके पश्चात वह उन विषयों को शोध निर्देशक के सम्मुख रखता है | निर्देशक शोधार्थी की रुचि एवं क्षमताओं का ध्यान रखकर उनमें से किसी एक विषय का चयन करता है |

ग) स्वीकृतिमूलक पद्धति -

इस पद्धति में शोधार्थी निर्देशक से किसी विषय के लिए आग्रह करता है | निर्देशक अपनी इच्छानुसार शोधार्थी की उसकी क्षमताओं को देखकर विषय देता है | शोधार्थी उस विषय को ही स्वीकार करता है | इस पद्धति में शोधार्थी की रुचि का ध्यान नहीं रखा जाता |

घ) सूची पद्धति -

इस पद्धति में विश्वविद्यालय अथवा विभाग या अनुसंधान केन्द्र स्वयं कुछ विषयों की सूची तैयार कर शोधार्थी के सामने रख देते है और शोधार्थी उन्हीं में से अपनी रुचि का विषय चुन लेते है |

इनचार पद्धतियों में से स्वतंत्र वैयक्तिक पद्धति सर्वोत्तम है | अत: इस पद्धति में भी आंशिक परिवर्तन कर इसे अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है | विषय चयन को ही विषय - निर्वाचन भी कहा जाता है | शोध प्रक्रिया एवं प्रविधि तथा शोध-कार्य का यह प्रथम चरण है | वस्तुत: (शोधकार्य) अनुसंधान एक धीर-गंभीर चिन्तन परक, मौलिकताभिमुख, बुद्धिनिष्ठ, वैज्ञानिक प्रक्रिया है | अत: एवं विषय चयन में चट मंगनी पट ब्याह की तरह जल्दबाजी नहीं होनी चाहिए |

६.४ अनुसंधान की समस्या

शोधकर्ता की शोधरुचि पूर्णतया एवं स्पष्ट एवं पुष्फल प्रमाणों से प्रमाणित हो जाने पर सहज ही सोपाधि या निरुपाधि अनुसंधान के लिए विषय की समस्या उपस्थित होती है | शोध में सामान्य से विशिष्ट और विशिष्ट से विशिष्टतम की ओर जाने का दृष्टिकोण रहता है | अत: स्पष्ट है कि निश्चित कालावधि की परीक्षा के पश्चात विषय की विस्तृति, गंभीरता, मौलिकता

तथा महत्ता का ज्ञान प्राप्त करके ही उस पर शोधकार्य करना आवश्यक है | शोधकर्ता को अपनी रुचि, सामर्थ्य एवं मेधा का ध्यान रखकर काव्य, नाटक, कहानी, उपन्यास, आत्मकता, निबंध, भाषाविज्ञान एवं काव्यशास्त्र आदि में से जो संभव हो विषय लेना चाहिए | शोधकर्ता को किसी विषय को चुनने के पूर्व सभी संभव स्त्रोतों से यह ज्ञात करना होगा कि वह विषय कितना नया, कितना भव्य और कितना गंभीर है | इन तीन कसौटियों में से किसी की भी उपेक्षा करने पर शोध का परिणाम भ्रामक, धोखा एवं निराशाजनक होगा | अनुसंधान विस्तार और गंभीरता की दृष्टि से ऐसा होना चाहिए जिसके साथ शोध की नियत अवधि में न्याय संभव हो सके |

६.५ पूर्ववर्ती संबंधित शोधकार्य का पुनर्निरीक्षण

शोधार्थी जिस विषय पर शोध कार्य कर रहा है यदि उस विषय से सम्बन्धित या उस विषय से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों पर पहले भी शोध कार्य हो चुका है तो शोधार्थी उसकी सूची देकर उनकी सीमाओं का निर्धारण भी स्पष्ट करता है | उन विषयों की उपलब्धियों और सीमाओं को प्राक्कथन में दर्शाकर ही वह शोध विषय की उपयोगिता की स्थापित कर सकता है | साथ ही अपने अपने अनुसंधान की आवश्यकता तथा मौलिकता को भी रेखांकित करता है |

६.६ अनुसंधान की रूपरेखा

'रूपरेखा' शब्द का सामान्य अर्थ है - किसी कल्पित या अनुभूत रुप का रेखाओं द्वारा एक सांकेतिक चित्र तैयार करना अथवा किसी विषय या रूप का संभावनापूर्ण, पूर्णकार्य, स्पष्ट संश्लिष्ट एवं व्यवस्थित रेखांकन को रूपरेखा कहा जाता है | रूपरेखा के लिए अंग्रेजी में Synopsis शब्द का प्रयोग किया जाता है | इसके अलावा रूपरेखा के लिए अंग्रेजी में स्केच (Skech), आउटलाइन (Outline), एवं प्लॅन (Plan) आदि समवर्ती शब्द पाये जाते हैं | रूपरेखा की संतुलित सुगठित एवं परिपूर्ण परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है - ज्ञान की किसी महत्त्वपूर्ण एवं नवीन व्याख्या के संभावना से सम्पन्न विषय या रूप के प्राकृतिक, तर्कसंगत, संक्षिप्त, व्यवस्थित, सुस्पष्ट, आधारभूत एवं संगोपांग रेखांकन 'शोध-रूपरेखा' कहलाती है | अनुसंधान कार्य के दौरान शोधार्थी जब अपने निर्देशक और सुधि विद्वानों के सहयोग और परामर्श शोध विषय के शीर्षक का चयन कर सोच लेता है और विश्वविद्यालय द्वारा उस विषय में शोधार्थी के पंजीकरण की औपचारिकता पूर्ण हो जाती है तब उस विषय पर व्यवस्थित कार्य करने के लिए शोधार्थी उसकी रूपरेखा निश्चित करता है | वास्तव में रूपरेखा निर्माण शोधकार्य को योजनाबद्ध तरीके से क्रियान्वित करने के लिए किया जाता है | दरअसल एक उत्तम रूपरेखा, व्यापक अध्ययन एवं गहन विश्लेषण प्रवृत्ति की परिचायक है और गंभीर शोध प्रबन्ध की नींव है |

वास्तव में रूपरेखा शोध विषय से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि शोधविषय के प्रति दृष्टि उसकी महत्ता पर उससे सम्बन्धित निष्कर्ष और उपलब्धि की स्पष्ट झलक हमें रूपरेखा द्वारा ही प्राप्त होती है | निर्वाचित शोध-विषय एक दीर्घायू श्रेष्ठ एवं सुन्दर भवन के निर्माण हेतु चुनी गई भूमि के समान होता है और उस विषय की रूपरेखा निर्माण होनेवाले उस भवन के लिए तैयार सुदृढ नींव के समान होती है | डॉ. राजेंद्र मिश्र के मतानुसार - "रूपरेखा एक

प्रकार से शरीर की रीढ़ की हड्डी है, जिसपर सारा शोधग्रन्थ टिका रहता है | अनुसंधान कार्य में शोध कार्य के दिशा - निर्धारण और लक्ष्यपूर्ति तक पहुँचने हेतु रूपरेखा की भूमिका निर्विवाद है |

रूपरेखा में शोध-विषय की सुस्पष्टता, पूर्णता, मौलिकता एवं शोध उद्देश्य आदि का होना आवश्यक है | जिसप्रकार उत्कृष्ट चित्र वही माना जाता है, जिसमें प्रत्येक लघुतम अंग-उपअंग तो प्रदर्शित हो ही साथ ही मनोभावों और क्रियाशीलता की भी स्पष्ट झलक भी मिलती हो | साथ ही एक सर्वोत्तम रूपरेखा में प्रत्येक अध्याय के भेद तथा उपभेदों का स्पष्ट पूर्ण एवं क्रमबद्ध अंकन होना चाहिए | एक सुयोग्य रूपरेखा अपनी वैज्ञानिक, रेखांकन क्षमता द्वारा 'गागर में सागर ही नहीं अपितु बिंदु में सिन्धु भर देती है |

६.७ स्त्रोत एवं सामग्री

जिन उपकरणों के आधारपर शोध-प्रबन्ध लिखा जाता है वह शोध की सामग्री कहलाती है | शोधकर्ता को शोध-विषय का क्षेत्र, प्रकृति, रूप, सीमा, कालखण्ड आदि को दृष्टि में रखकर तद्रुप सामग्री संकलन करना होता है | यह एक वैज्ञानिक कार्य है | सामान्यत: शोध सामग्री दो प्रकार की होती है - मुख्य एवं 'सहायक' | जिस सामग्री से शोध सम्बन्धी तथ्यों की प्रामाणिकता सीधे-सीधे सिद्ध हो वह मुख्य सामग्री कहलाती है | जिस सामग्री से तथ्यों की प्रामाणिकता को सिद्ध करने के लिए सहायता मिलती है उसे 'सहायक सामग्री' कहते है | अभिप्राय यह है कि जिस के आधार पर सत्य की स्थापना हो वह मुख्य सामग्री तथा जो सत्य की स्थापना का पोषण करे 'वह' 'सहायक सामग्री' है | सहायक सामग्री को 'गौण सामग्री' भी कहा जाता है किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह शोध के लिए अनुपयोगी होगी | सहायक सामग्री ही मुख्य सामग्री को निष्कर्ष तक पहुँचाने में बल प्रदान करती है |

शोध सामग्री संकलन के स्त्रोत सामान्यत: दो प्रकार के होते है - एक मौलिक और दूसरा अनुदित | शोधकर्ता को प्रमुख रूप से मौलिक स्त्रोतों पर अधिक ध्यान देना होता है | सामग्री संकलन के सामान्यत: निम्न स्त्रोत पाये जाते हैं - प्रकाशित ग्रन्थ, अप्रकाशित हस्तलिखित ग्रन्थ, आत्मकथा, संस्मरण, डायरी, साहित्यकारों का पत्राचार, साहित्यकारों के साक्षात्कार तथा भेंटवार्ता,संगोष्ठी, विशेषज्ञ ग्रन्थालय, पत्र - पत्रिकाएँ, दूरसंचार माध्यम, तथा विविध कोश आदि |

शोध की विषय की भिन्नता के अनुसार सामग्री संकलन भी स्त्रोत होते हैं | साहित्यिक शोध की से सामग्री संकलन के स्त्रोतों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है -

क) मुख्य कोटि के स्त्रोत -

मुख्य कोटि के स्त्रोत में वे रचनाएँ आती हैं जो आलोच्य विषय से सम्बन्धित होती हैं | आलोच्य विषय में जिस कृति पर शोधकार्य किया जाता है, उस कृति के रचनाकार की समस्त रचनाएँ और उसके तत्कालीन परिवेश के अन्तर्गत आनेवाली विशिष्ट रचनाएँ मुख्य कोटि में ही समाहित होगी | जैसे भीष्म साहनी के नाटकों का कथ्य एवं शिल्प विषय पर शोधकार्य करने कि लिए शोधकर्ता भीष्म साहनी के समग्र साहित्य का संकलन करेगा और साथ ही भीष्म साहनी के नाटकों के रचनाकाल के समय के अन्य नाटककारों के नाटकों

काअनुशीलन करने के लिए उनका संकलन भी अनिवार्य होगा | शोधार्थी को मुख्य स्त्रोत की रचनाओं के उपरान्त ही विषय का तथ्यात्मक ज्ञान होगा | इसी के अध्ययन से ही उसे रचनाकार के युगीन - परिवेश और तत्कालीन साहित्य के शैलिक विधान का ज्ञान होने के साथ साथ रचनाकार की जीवनदृष्टि एवं चिन्तन - शक्ति का ज्ञान भी होगा |

ख) मध्यम कोटि के स्त्रोत -

इस कोटि के स्त्रोत के अन्तर्गत शोध विषय से सम्बन्धित समीक्षात्मक ग्रन्थों का समावेश किया जाता है | अर्थात ये समीक्षा ग्रन्थ मूल शोध विषय और उसके अनुशीलन के बीच के अंतर को पालने का काम करते है | इन्हें सहायक ग्रन्थ भी कहा जाता है | शोधार्थी इन्हीं ग्रन्थो की सहायता से विषय के मूल निष्कर्ष की दिशा तक सहजता से पहुँचता है | मध्यम कोटि के स्त्रोत के अन्तर्गत समीक्षा ग्रन्थों के अतिरिक्त पत्र पत्रिकाएँ है | विशेषांक, विविध कोश - ज्ञानकोश, विश्व कोश, साहित्य कोश, पुरातत्व एवं महत्त्वपूर्ण सरकारी दस्तावेजों आदि को समाहित किया जाता है | यह सामग्री केवल बड़े एवं विशेष पुस्तकालयों, ग्रन्थालयों अथवा संग्रहालयों से ही प्राप्त की जा सकती है | इसके लिए शोधार्थी को कठिन परिश्रम करना पड़ता है |

ग) सहयोगी कोटि के स्त्रोत -

इस स्त्रोत से प्राप्त सामग्री को गौण सामग्री कहते हैं | इसके अंतर्गत शोधार्थी को रचनाकार के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए उसके समकालीन रचनाकारों की भेटवार्ता करनी होती हैं | इसमें साक्षात्कार, संस्मरण, पत्र आदि आते हैं | इस स्त्रोत से प्राप्त सामग्री का उपयोग शोधार्थी के विवेक पर होता हैं | कभी-कभी मिथ्या बातों द्वारा लोग शोधार्थी को सत्य से दूर करने का प्रयास भी करते हैं | किन्तु कई बार ऐसे स्त्रोतों से कुछ विशेष तथ्य भी शोधार्थी को प्राप्त हो जाते हैं ; जो उसके शोध के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं |

६.८ कम्प्युटर का भाषिक अनुप्रयोग

कम्प्युटर तकनीक ने भाषिक अनुसंधान के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया हैं | साहित्य, भाषाशास्त्र और भाषाओं की विविध शाखाओं में संगणक का प्रयोग तेजी से बढ़ रहा हैं | कम्प्युटर का भाषिक अनुप्रयोग न केवल अनुसंधान प्रक्रिया को सुव्यवस्थित और सटीक बनाता हैं, बल्कि नई संभावनाओं के द्वार भी खोलता हैं | कम्प्युटर ने भाषाई डेटा संग्रह और प्रबन्धन को अत्याधिक सरल बना दिया हैं | अनुसंधान में बड़ी मात्रा में भाषाई डेटा, जैसे - भाषण, लेख, ग्रन्थ और ध्वनियाँ को सहेजना, उसे वर्गीकृत करना और विश्लेषण करना अब आसान हो गया हैं | विशेष रूप से कॉर्पस लिंग्विस्टिक्स (Eorpus Lingustics) के क्षेत्र में कम्प्युटर की सहायता से लाखों शब्दों के डेटाबेस (Corpus) का निर्माण और विश्लेषण संभव हुआ हैं | कम्प्युटर तकनीक ने भाषाई विश्लेषण को स्वचलित बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया हैं | पहले जहाँ शोधकर्ता को विभिन्न भाषाई तत्त्वोंजैसे शब्दावली व्याकरण और ध्वनियों का मैन्युअल विश्लेषण करना पड़ता था, अब कम्प्युटर द्वारा यह कार्य त्वरित और सटीक तरीके से किया जाने लगा हैं | कम्प्युटर आधारित टूल्स जैसे Grammarly व्याकरणिक त्रुटियों का पता लगाने और सुधारने में मदद करते हैं | यह शोधकर्ताओं को अपने लेखन को शुद्ध और स्पष्ट रखने में सहायता करता हैं | शुद्ध आवृत्ति

विश्लेषण भी कम्प्युटर के कारण संभव हो सका हैं | किसी विशेष पाठ में किस शब्द का कितनी बार प्रयोग किया गया हैं यह जानकारी कम्प्युटर प्रणाली से सहज हो गई हैं |

संसार की कईभाषाएँ विलुप्त होने के कगार पर हैं, इस स्थिती में कम्प्युटर तकनीक भाषाओं को संरक्षित और पुनर्जीवित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं | भाषाओं का डिजिटलीकरण, ध्वन्यात्मक डेटा का संग्रह और भाषाई संरचनाओं का विश्लेषण करने के लिए कम्प्युटर का उपयोग किया जा रहा हैं | विभिन्न सॉफ्टवेअर और ऐप्स विलुप्त होती जा रही भाषाओं की पुनर्बहाली में मदद कररहे हैं | कम्प्युटर ने मल्टीमॉडेल अनुसंधान को भी सुलभ बनाया हैं, जिसमें भाषा के साथ अन्य डेटा प्रकारों- जैसे छवि, ध्वनि और व्हिडिओ का भी विश्लेषण किया जाता हैं | मशीन लर्निंग (Machine Learning) का उपयोग भाषाई अनुसंधान में उभरती हुई तकनीक हैं, जिसमें कम्प्युटर स्वचालित रूप से भाषाई डेटा का विश्लेषण कर सकते हैं और पैटर्न पहचान सकते हैं | स्वर पहचान, भाषण संश्लेषण कम्प्युटर विज्ञान के प्रमुख क्षेत्रों में से एक हैं, जो अनुसंधान में गहन उपयोगी सिद्ध हो गये हैं | इस तकनीक की मदद से शोधकर्ता भाषाओं और बोलियों के उच्चारण, ताल और स्वरुपों का विश्लेषण करता हैं | जिसके कम्प्युटर तकनीक ने भाषिक अनुसंधान के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान दिया हैं | डेटा संग्रहण से लेकर विश्लेषण, संचालन से लेकर भाषा संरक्षण तक, कम्प्युटर का योगदान अनुसंधान प्रक्रिया को अधिक सटीक, त्वरित और प्रभावी बनाया हैं | भाषा अध्ययन और अनुसंधान के क्षेत्र में कम्प्युटर के अनुप्रयोग का भविष्य अत्याधिक आशाजनक हैं |

६.९ प्रश्नावली निर्माण

प्रश्नावली विषय की अपेक्षाओं के अनुरूप चुने गये प्रश्नों की तालिका हैं, जिसे ड़ाकद्वारा या अन्य संचारमाध्यमों से उत्तरदाताओं के पास शोध विषय से सम्बन्धित जानकारियाँ प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रेषित की जाती हैं | वास्तव में प्रश्नावली पद्धति साक्षात्कार विधि का ही भिन्न रूप हैं | साक्षात्कार विधि की जटिलताओं से बचने के लिए प्राय: प्रश्नावली पद्धति का आधार लिया जाता हैं | शोधकर्ता प्रश्नावली निर्माण करने से पूर्व अपने निर्देशक तथा अन्य विशेषज्ञों से सम्यक विचार विमर्श करके ही प्रश्नावली तैयार करता हैं | प्रश्नों का निर्माण करते समय प्रश्न स्पष्ट (सुबोध, क्रमबद्ध, संख्या में सीमित, संक्षिप्त, विषय केन्द्रित परस्पर पूरक तथा विषय के सभी पक्षों को ध्यान में रखकर ही शोधकर्ता प्रश्नावली बनाता हैं |

शोधकर्ता शोध विषय को ध्यान में रखते हुए प्रश्नावली दो रूपों में तैयार कर सकता हैं | विषय के अनुरूप वह कुछ प्रश्नों को तैयारकरके उससे सम्बन्धित व्यक्तियों को उनके उत्तर करने के लिए भेज सकता हैं | या फिर सामूहिक रूप से लोगों के पास जाकर उस प्रश्नावली को देकर उनके उत्तर प्राप्त कर सकता हैं | लिखित रूप में होने के कारण इस प्रणाली से प्राप्त जानकारियाँ अधिक प्रामाणिक होती हैं | परन्तु इस पद्धति की कुछ सीमाएँ भी हैं | अपनी - अपनी परिस्थितियों, मन: स्थितियों से आबद्ध होने के कारण सभी उत्तरदाता प्रश्नों के उत्तर देने में समान उत्साह और अभिरुचि का परिचय नहीं दे पाते | साथ ही इस पद्धति का उपयोग अशिक्षित स्त्रोत-व्यक्तियों से सामग्री प्राप्त करने में नहीं किया जा सकता | सुशिक्षित व्यक्ति ही प्रश्नों के उपयुक्त उत्तर दे सकते हैं | साधारणत: किसी समूह में प्रश्नावली

द्वारा सामग्री संचय करने पर कम से कम पचास प्रतिशत उत्तर मिलने पर ही कार्य को सफल माना जाता हैं |

६.१० साक्षात्कार

इस पद्धति में शोधकर्ता अपने शोध - विषय से सम्बन्धित व्यक्तियों विद्वानों आदि से साक्षात्कार द्वारा सामग्री का संकलन करता हैं | ऐसी सामग्री किसी रचनाकार के जीवन पर विशेष प्रकाश ड़ालने में सक्षम होती हैं | बहुधा ऐसी सामग्री में सत्यता का भ्रम बना रहता हैं | इसीलिए शोधकर्ता अपनी बुद्धि विवेक और विभिन्न साक्षात्कारों द्वारा एकत्र सामग्री पूर्णत: सत्य के धरातल पर खरी उतरती हैं | कई बार साक्षात्कार के माध्यम से कुछ अनुकूल पहल भी शोधकर्ता के सम्मुख आ जाते हैं जो उनके शोध को अत्यंत उपयोगी बनाती हैं | क्षेत्रीय शोध के लिए साक्षात्कार - विधि सर्वाधिक अनुकूल है | क्योंकि इसमें साक्षर और निरक्षर सभी प्रकार के व्यक्तियों के विचारों को लिखित रूप में या टेप द्वारा ग्रहण किया जाता हैं | साक्षात्कार से पूर्व साक्षात्कारकर्ता को आवश्यक तैयारी कर लेनी चाहिए | जिस व्यक्ति से साक्षात्कार करना हो उसे अपने आने की पूर्वसूचना देनी चाहिए | उन्हें साक्षात्कार के उद्देश्य से अवयव के साथ-साथ अपने प्रमुख प्रश्नोंकी प्रति उसे भेज देनी चाहिए जिससे वे अपने प्रश्नों का उत्तर तैयार कर सकें | साक्षात्कार प्रश्नावली में सर्वप्रथम व्यक्तिगत विवरण, लेखन कार्य का प्रारम्भ कब हुआ, किससे प्रेरणा मिली, कोई पूर्वज या परिवार का सदस्य साहित्यकार था, इसके अलावा उनकी रुचियाँ, प्रकाशित कृतियों का विवरण, लेखन विधा, लेखन का उद्देश्य आदि के विषय में प्रश्न पूछकर उसके उत्तर कागज में नोट कर लेने चाहिए और उसे लेखक के सामने पढ़कर हस्ताक्षर ले लेना चाहिए या फिर संलाप टेप में भर लिया जाये तो वह शत-प्रतिशत प्रामाणिक हो जायेगा | अत: साक्षात्कारकर्ता को उत्तरदाता की सुविधा, योग्यता, मनोदशा आदि का ध्यान रखकर सौहार्दपूर्ण वातावरण में साक्षात्कार का आयोजन करना चाहिए |

६.११ सामग्री का विवेचन - विश्लेषण

शोध प्रक्रिया का सबसे विस्तृत एवं मुख्य अंग सामग्रीका विवेचन -विश्लेषण हैं | शोध-सामग्री के संचयन के पश्चात अगला कार्य विवेचन विश्लेषण का होता हैं | अनुसंधान में अध्ययन की जो बौद्धिक प्रक्रिया हैं, वही विवेचन विश्लेषण हैं | 'विश्लेषण' का सामान्य अर्थ हैं - 'पृथक करना' अर्थात किसी चीज के अंगों को अलग करना | दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि किसी वस्तु की छान-बीन करना विश्लेषण हैं | विषय से समाचित आकडों (Data) को एकत्रित करना फिर सूचनाओं को व्यवस्थित करना आकड़ों को वर्गीकृत करके उनसे प्राप्त सभी सूचनाओं का विश्लेषण, विवेचन करना शोधकर्ता की क्षमता और योग्यता पर निर्भर करता हैं | वस्तुतः शोध की श्रेष्ठता एवं कनिष्ठता की कसौटी तथ्यों या सामग्री के संकलन पर नहीं अपितु विश्लेषण, विवेचन पर आधारित होती हैं | विश्लेषण का महत्त्व यह है कि सामग्री के विश्लेषण के बिना निष्कर्षों तक नहीं पहुँचा जा सकता | अत: सुधि शोधकर्ता सत्य संस्थापन के साधन के रूप में ही तथ्यों को ग्रहण करता हैं और विवेचन, विश्लेषण द्वारा ही वह तथ्यों को निर्माण के कारणों की तलाश करता हैं तथा एक विशिष्ट सत्य उद्घाटित करता हैं | निष्कर्षों की स्थापना करता हैं |

इस विवेचन, विश्लेषण प्रक्रिया में तथ्य-संचयन के समय निरक्षण विषयानुरूप तथ्य का ग्रहण, असम्बंध एवं अनुपयोगी तथ्यों का अस्वीकार लक्ष्याभिमुख परिकल्पना की पृष्ठभूमि से निर्मित प्रत्येक तथ्य के मूलार्थ तथा संकेतार्थ का सुनिश्चय कार्यकारण की शृंखला में तथ्यों की स्थापना और अनेक परिकल्पनाओं से निष्कर्ष तक पहुँचनेवाली परिकल्पना के निहितार्थ भी अभिव्यक्ति का कार्य विश्लेषण के द्वारा ही संभव हो पाता हैं | तथ्य विवेचन विश्लेषण का कार्य तो सामग्री - संग्रह के समय से ही आरम्भ हो जाता हैं | विभिन्न परिस्थितियों, अवसरों और स्थानों से प्राप्त तथ्यों में ऐसे तथ्य या तथ्यों का चयन किया जाता हैं |जो शोध विषय से सम्बन्ध एवं उसके अनुरूप होते हैं | इन तथ्यों में से अनुपयोगी तथ्यों का परित्याग किया जाता हैं | इस तरह विश्लेषण की प्रक्रिया में प्राप्त सामग्री को तोड़कर शोध विषय से तथ्यों का ग्रहण एवं असम्बंध तथ्यों का परित्याग शोध-विषय के विवेचन-विश्लेषण का प्रथम चरण हैं |

तथ्य विश्लेषण की आवश्यकता तब होती हैं जब एक अध्याय विशेष के लिए वर्गीकरण के उपरान्त गृहित तथ्यों को विविध उपशीर्षकों के अंतर्गत विभाजित किया जाता हैं | संकलित सामग्री से प्राप्त ज्ञान जंगल में नाचनेवाले मोर के समान होता हैं | अत: व्याख्या में जितना महत्त्व विषय के पूर्ण, स्पष्ट एवं व्यवस्थित ज्ञान का हैं, उतना ही उसके प्रतिपादन का भी हैं | प्रतिपादन क्षमता का साहित्यिक शोध में विशेष महत्त्व होता हैं | भाषाशैली को शोध का सशक्त साधन माना गया हैं | अत: शोधकर्ता में अभिव्यक्ति की पर्याप्त क्षमता होनी चाहिए | उसमें शब्द भण्डार की विपुलता, वाक्य रचना का नैपुण्य तथा प्रवाहमयी किन्तु संयम शैली की दक्षता परम वांछनीय हैं | शोध विषय की शोधकर्ता के मन में जो पूर्ण एवं स्पष्ट रूपरेखा बन चुकी हैं उसे उसी रूप में प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करने में ही अनुसंधान की पूर्णता एवं सफलता हैं |

६.१२ सारांश

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि अनुसंधान प्रक्रिया शोध विषय को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने के एक विशेष क्रिया हैं, जिसका पालन करते हुए शोधकर्ता अपने शोधकार्य को उचित रीति से एवं व्यवस्थित ढंग से पूर्णता प्रदान करता हैं | अनुसंधान प्रक्रिया शोध का वह सैद्धान्तिक पक्ष हैं, जिसके बिना अनुसंधान कार्य असंभव हैं | शोध-विषय चयन से लेकर शोध निष्कर्ष तक के सारे तत्व इसमें आ जाते जिसे अनुसंधान के सोपान कहा जाता हैं |

६.१३ दीर्घोत्तरी प्रश्न

क) अनुसंधान प्रक्रिया के स्वरूप पर प्रकाश डालिए |

ख) अनुसंधान प्रक्रिया के चरणों को स्पष्ट किजिए |

ग) अनुसंधान प्रक्रिया के प्रमुख तत्वों पर प्रकाश डालिए |

६.१४ लघुत्तरी प्रश्न

१) अनुसंधान की आधारशिला क्या हैं ?

२) विषय चयन की कितनी पद्धतियाँ प्रचलित हैं ?

३) विषय चयन की कौनसी पद्धति सर्वोत्तम मानी जाती हैं ?

४) रूपरेखा का सामान्य अर्थ क्या हैं ?

५) रूपरेखा अंग्रेजी के किस शब्द का हिन्दी रूपान्तर हैं ?

६) किस विद्वान ने रूपरेखा को शरीर की रीढ़ की हड्डी माना हैं ?

७) शोध सामग्री कितने प्रकार की होती हैं ?

८) प्रश्नावली कितने रूपों में बनाई जाती हैं ?

९) किस पद्धति में संलाप टेप का प्रयोग किया जाता हैं ?

१०) विश्लेषण का सामान्य अर्थ क्या हैं ?

६.१५ सन्दर्भ ग्रन्थ

१) हिन्दी अनुसंधान, डॉ. विजयपाल सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

२) अनुसंधान स्वरूप और आयाम - डॉ. उमाकान्त गुप्त, डॉ. ब्रजरतन जोशी प्रकाशन, नयी दिल्ली

३) अनुसंधान प्रविधि - डॉ. विनयमोहन शर्मा, नेशनल पेपरवैक्स, नई दिल्ली

४) शोध प्रविधि और प्रक्रिया - डॉ. हरीश अरोड़ा, के. के. पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

५) शोध प्रविधि - डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, पंचकूला, हरियाणा

✞✞✞✞

७

पाठानुसंधान

इकाई की रूपरेखा :

७.१ इकाई का उद्देश्य

७.२ प्रस्तावना

७.३ पाठानुसंधान

७.४ पाठ संपादन

७.५ पाठ सुधार

७.६ पाठ निर्णय

७.७ हस्त लेख

७.८ मूल लिपि

७.९ सारांश

७.१० दीर्घोत्तरी प्रश्न

७.११ लघुत्तरी प्रश्न

७.१२ सन्दर्भ ग्रन्थ

७.१ इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत सम्मिलित की गई विषयवस्तु के अध्ययन से अध्ययनकर्ता को निम्नलिखित जानकारियाँ देने का उद्देश्य निहित है |

अ) पाठानुसंधान के सम्पूर्ण ज्ञान और उपयोग से किसी शोध कार्य को पूरी दक्षता और सफलता के साथ सम्पन्न करना एवं

ब) पाठानुसंधान को विभिन्न प्रक्रिया की जानकारी देना

७.२ प्रस्तावना

अनुसंधान में पाठानुसंधान (Texual Analysis) एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और व्यापक अध्ययन क्षेत्र है, जिसका प्रयोग साहित्य, संस्कृति, समाजशास्त्र और मीडिया के क्षेत्र में किया जाता है | इस विधि के मध्यम से शोधकर्ता विभिन्न प्रकार के पाठों का विश्लेषण कर उनके गहरे निहितार्थ, विचारधारा, भाषा और सामाजिक संदर्भो को समझता है | पाठानुसंधान का उपयोग साहित्यिक कृतियों के आलोचानात्मक अध्ययन से लेकर राजनीतिक भाषणों, समाचार लेखों , फिल्म स्क्रिप्ट्स और अन्य सांस्कृतिक उपादानों तक

होता है | यह अध्ययन विधिं एक ही पाठ के भीतर छिपे हुए सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषाई संदर्भों को उजागर करती है, जो उस पाठ के अध्ययनकर्ता को अधिक सटीक निष्कर्ष तक पहुँचाने में सहायता करती है |

७.३ पाठानुसंधान

पाठानुसंधान एक विश्लेषणात्मक विधी है, जिसके अन्तर्गत किसी विशेष पाठ या संवाद का गहन अध्ययन किया जाता है | इस विधि का उपयोग यह समझने के लिए किया जाता है कि किस प्रकार के संदेश, विषयवस्तु, विचारधारा है | पाठानुसंधान साहित्यिक सांस्कृतिक और सामाजिक क्षेत्रों में समान रूप से उपयोगी होता है | इसका मुख्य उद्देश्य पाठ के उसके वास्तविक और अप्रत्यक्ष रूप में समझना है | इसके माध्यम से पाठ के अर्थ को न केवल उस रूप में देखा जाता है, जैसा यह दिखाई देता है, बल्कि उसके पीछे छिपे सन्दर्भों और धारणाओं को भी उजागर किया जाता है | पाठ के प्रकार और अनुसंधान के लक्ष्य के अनुसार **पाठानुसंधान** के भिन्न भिन्न उद्देश्य होते है, जिसमें प्रमुख है -

अ) पाठ में छिपे हुए अर्थों को समझना

ब) भाषा और विचारधारा का अध्ययन करना

क) सामाजिक और सांस्कृतिक सन्दर्भों का अध्ययन करना

पाठानुसंधान एक सुव्यवस्थित प्रक्रिया है, जिसके कई चरण होते हैं | इस प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में पाठ संपादन, पाठसुधार, पाठ निर्णय, हस्तलेख मूल लिपि आदि प्रमुख है |

७.४ पाठ संपादन

पाठानुसंधान का कार्य बहुत ही दायित्वपूर्ण, जटिल, श्रमसाध्य है अत: इसके लिए पाठानुसंधान में अपार धैर्य, सन्तुलन, निष्ठा और विशेषज्ञ की आवश्यकता होती है | यह विशेषज्ञता कई स्तरों पर अपेक्षित है | सम्पादन पाठानुसंधान का सहवर्ती कार्य है | अत: अनुसंधान को एक सुसम्पादक के रूप में विभिन्न प्रतिलिपियों के सम्यक परिचय के साथ अपनी अनुसंधान प्रक्रिया के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कृति के प्रारम्भ में एक सम्पूर्ण भूमिका प्रस्तुत करनी चाहिए | कृति की विषय वस्तु सन्देश और महत्त्व आदि पर भूमिका में प्रकाश डालना चाहिए |

प्राचीन पाठ (पाण्डुलिपियों) का सम्पादन एक बड़ी समस्या होती है क्योंकि प्रमाणिक और प्राचीन पांडुलिपियाँ उपलब्ध नहीं है | अत: खण्डित या छूटे हुए पाठों का सही रूप प्रस्तुत करने के लिए उनका तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है | संपादन की प्रामाणिकता के लिए उपलब्ध पाठों की ऐतिहासिक एवं क्षेत्रीय पहचान होनी चाहिए | साथ ही पाठ संपादन के समय भाषा की सृजनात्मकता के साथ ही पाठान्तरों को जानना भी आवश्यक हो जाता है | पांडुलिपियों के संपादन के लिए भाषा का विकासक्रम और उनकी रचना का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है | पांडुलिपियों में दो प्रकार से पाठ उपलब्ध होते हैं | लेखक या कवि के हाथ

लिखी प्रतिलिपि हो वह पांडुलिपि और यदि लेखक या कवि के हाथ की लिखी प्रति उपलब्ध नहीं हैं, तो जिसने भी लिखा है वह पांडुलिपि | इन दोनों में कवि या लेखक को हाथ लिखी प्रति अधिक प्रामाणिक होती है, जिस पर विचार करने के लिए दो प्रमुख साधनों का प्रयोग किया जाता है -

अ) अंतरंग -

कवि के आत्मकथन, दार्शनिक, नैतिक एवं धार्मिक विचार भाव, छन्द, भाषा आदि की परीक्षा करके उसी कवि की अन्य कृतियों से साम्य के आधार पर तुलनात्मक रूप में परिचय प्रस्तुत किया जाता है |

ब) बहिरंग -

कृति का काल निर्णय हो जाने पर या उसका काल निर्णय करने के लिए तद्युगीन परिस्तिथियों, घटनाओं,रचनाओं में इंगित वर्णनों पर आधारित तथ्यों की प्रामाणिकता की पुष्टी तत्कालिन अन्य रचनाओं, इतिहास ग्रन्थों, प्रामाणिक दस्तावेजों और हुक्मनामों आदि से भी की जाती है |

पांडुलिपि का सम्पादन करने में एक अन्य समस्या आ जाती है, वह है पाठ की शुद्धता की अन्य कृति की जितनी भी प्रतियाँ उपलब्ध हो, उन्हें एकत्रित करना सर्वथा वैज्ञानिक माना जाता है | प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों को उपलब्ध कर कवि के मूल पाठ तक पहुँचने में साहित्यिक और वैज्ञानिक इन दोनों प्रणालियों का व्यापक महत्त्व है | इन दोनों का समन्वय पाठ संपादन को ठोस बनाता है | इस सन्दर्भ में आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कथन दृष्टव्य है - "वैज्ञानिक पद्धति थर्मामीटर है | इसके आधार पर सारी सच्चाई नही नापी जा सकती | नाड़ी-ज्ञान अर्थात परम्परा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए काव्यानुशीलन गहराई से करना चाहिए | ग्रन्थों की प्रारंभिक टीकाओं से अर्थबोध कर लेना चाहिए अन्यथा अनर्थ ही अनर्थ होगा |" अत: पाठ का संपादन एक महत्वपूर्ण साहित्यिक अनुष्ठान के समान है |

७.५ पाठ सुधार

पाठसुधार की आवश्यकता तब पड़ जाती है जब किसी कवि या लेखक की स्वहस्तलिखित मूल पांडुलिपि उपलब्ध नहीं होती तथा समकालीन या परावर्ती प्रतिलिपिकारों के द्वारा तैयार की गई मूल पांडुलिपि की प्रतिलिपियाँ ही प्राप्त होती है | इन सभी प्रतिलिपिकारों में न तो सच्ची निष्ठा होती है, न सावधानी और न हीं अपेक्षित योग्यता | ऐसी स्थिति में प्रतिलिपि परम्परा में मूल पाठ भ्रष्ट से भ्रष्टतर होता चला जाता है |

पाठानुसंधाता का कार्य सामान्यत: तो पाठ - चयन तक ही सम्पन्न हो जाता है, किन्तु अनुसंधाता कोरा अनुसंधाता ही नहीं है, वह दृष्टि सम्पन्न शोधक भी है, शोधक खोजी भी होता है और सुधारक या संशोधक भी | जब कभी पाठ-निर्धारण के समय पाठानुसंधान को उपलब्ध प्रतिलिपियों में प्राप्त पाठान्तरों में से कोई भी पाठ न तो सन्दर्भ की दृष्टि से, न ही छंद की दृष्टी से, न भाषा वैज्ञानिक दृष्टी से, और न ही शैली वैज्ञानिक दृष्टि से उपयुक्त प्रतीत होता है, तो ऐसी स्थिति में वह उपलब्ध पाठान्तरों में से किसी न्यूनतम विकृत पाठ को ऐसे ढंग से सुधार कर प्रस्तुत करता है कि वह सन्दर्भ और छन्द की नैसर्गिक अपेक्षाओं पर तो

खरा उतरता ही है, साथ ही रचना की भाषिक और भावात्मक प्रकृति के भी सर्वथा अनुरूप सिद्ध होता है | ऐसा लगता है कि वही पाठ मिल गया है, जो मूल रचनाकार ने मूल कृति में प्रयुक्त किया होगा तथा जो किसी प्रकार प्रतिलिपिकार के प्रमाण का शिकार होकर विकारग्रस्त हो गया होगा | पाठ सुधार (Emendation) सामान्य अनुसंधाताओं की शक्ति के बाहर है | वस्तुत: इनके लिए शोधक में रचनाकार की कारयित्री प्रतिभा का होना भी नितान्त आवश्यक है | पाठ सुधार का कार्य अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है | इस क्षेत्र में तभी कदम रखना चाहिए, जब पाठ निर्धारण में वास्तविक संकट उपस्थित हो गया है | किसी रचनाकार की कृति के साथ अन्यविकार और अनावश्यक चेष्टा के रूप में अनुचित छेड़छाड़ सर्वथा अयोग्य है | यदि सही स्थान पर समीचीन पाठ सुधार किया जा सका है | तो यह निश्चय ही प्रमाद सागर में निमग्न होते पाठ का उद्धार है | अत: पाठ सुधारक कभी कभी किसी कृति रचना या पाठ का उद्धारक बन सकता है |

७.६ पाठ निर्णय

प्रामाणिक पाठ के चयन के लिए उपलब्ध प्रतिलिपियों का सम्बन्ध निर्धारण पाठानुसंधान के लिए प्राथमिक आवश्यकता है | सामान्य निर्धारण के लिए प्राप्त प्रतिलिपियों के पाठों का सूक्ष्मता से मिलान या तुलना अपेक्षित होती है | भिन्न - भिन्न पाठों की तुलना से दो बातें उभरकर सामने आती है | एक बात तो यह सामने आयेगी किसकी प्रतिलिपियों में पाठगत बहुत सी समानताएँ मिलेंगी | इसे पाठ साम्य कहा जाता है | यह पाठ साम्य ही सारी प्रतिलिपियों को एक सम्बन्ध सूत्र में जोडनेवाला मूल सम्बन्ध सूत्र है | इसी पाठ साम्य के आधार पर मूल कृति सारी प्रतिलिपियों में अपना प्रस्तित्व बनाए हुए है | मूल का पाठ ही पाठ साम्य के रूप में विभिन्न प्रतिलिपियों में विद्यमान है | अत: यह प्रामाणिक रूप में ग्राह्य है | पाठों के मिलान से दूसरी बात जो उभरेगी, वह है पाठ वैषम्य या पाठान्तर या पाठ-विकृति | वास्तव में यह पाठ-विकृति या पाठ वैषम्य भी एक प्रकार का सम्बन्ध ही है, क्योंकि यह मूल पाठ से ही विकार के रूप में पैदा हुआ है | हाँ लेकिन इसे गौण सम्बन्ध माना जा सकता है | इन पाठान्तरों या पाठ - विकृतियों के सूक्ष्म पर्यालोचन से मूल पाठ या शुद्ध पाठ तक पहुँचने में सहायता मिलती है | उदाहरण के रूप में पाठान्तरों के तुलनात्मक अध्ययन से देखा जा सकता है कि जो पाठान्तर छन्द, सन्दर्भ, भाषिक संरचना आदि की दृष्टि से सटीक सिद्ध होता है, तो वह निश्चय ही सही और प्रामाणिक होने के कारण ग्राह्य है | इस प्रकार पाठ विकृतियों को भी पाठ संस्कृति में रुपान्तरित करते हुए मूल कृति के पुरे पाठ का पुनर्निमाण या अनुसंधान किया जा सकता है | लेकिन यहाँ यह बात अवश्य ध्यान में रखनी है कि पाठान्तरों में से वही पाठ ग्राह्य हो सकता है जो मूल रचना या रचनाकार की अनुभूमिगत और अभिव्यक्तिगत प्रकृति के सर्वथा अनुरूप हो | सन्दर्भ, चिन्तनगत अन्विती, भाषिक संरचना या शैली के नैसर्गिक स्वरूप के प्रतिकूल पड़ने वाले पाठान्तर प्रामाणिक पाठ के रूप में स्वीकार नहीं किये जा सकते | अत: पाठों के साम्य वैषम्य को आधार मानकर साम्य की सर्वाधिक और वैषम्य की न्यूनतम सम्भावनाओं वाली प्रतिलिपि के पाठ को मूल पाठ के निकटतम मानकर समूची कृति का पाठ-निर्णय किया जा सकता है |

७.७ हस्त लेख

पाठ निर्धारण का कार्य लिखित भाषा से जुड़ा हुआ है | पाठ का निर्धारण करने की अनेक विधियाँ है और उनके अनेक प्रयोग भी किये गये है | जब एक रचना की अनेक प्रतिलिपियाँ मिलती है तब पाठ भेद होने की संभावनाएँ अधिक होती है | अत: मूल पाठ के निर्धारण का सबसे पहला नियम यह है कि उपलब्ध प्रतिलिपियों की प्राचीनतः निर्धारित कर लेनी चाहिए | जो प्रति जितनी प्राचीन होगी वह उतनी ही मूल पाठ के समीप होगी | ऐसी स्थिति में भाषा और लिखावट प्रतिलिपि के काल निर्णय में सहायक हो सकती है | पाठ निर्धारण में भाषाशास्त्र का ज्ञान भी आवश्यक है | भाषाशास्त्र की यह प्रवृत्ति है कि कई जगहों पर 'इ' के स्थान पर 'अ' का आगम हो जाता है जैसे कवि का ‘कव’ इसका भी ध्यान रखना आवश्यक है तभी कवि से कवयित्री बनता है | इसीप्रकार 'ड' के स्थान पर 'ट' आ जाता है, तथा 'घ' के स्थान पर 'झ' का आगम होता है तब संध्या का संधाया बन जाता है और फिर सांझ हो जाता है | इस प्रकार के परिवर्तनों का भी पांडुलिपि संपादन में विशेष महत्व है |

पाठ निर्धारण का कार्य हस्तलेख आश्रित है | अब यदि कही 'व' और 'ब' के भेद को नहीं पहचाना गया तो पाठ विकृत हो सकता है | वीर-रस उत्कृष्ट रस है उसे वीर रस नहीं माना जा सकता है | इसी प्रकार के अनेक शब्द है | जैसे "वयण सगाई वालियाँ" जैसे शब्द में अत्यन्त सावधानी रखना आवश्यक है, क्योंकि राजस्थानी में प्रयुक्त ‘वालिया’ शब्द देशज है जिसका अर्थ है 'देना' और यदि 'बालिया' लिख दिया तो इसका अर्थ हो जायेगा ज्वलन या जलना | इस प्रकार पाठ संपादन करते समय अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है |

७.८ मूल लिपि

पांडुलिपियों के साथ अनेक लिपियों का भी सम्बन्ध है | विचार राशी की सुरक्षा के लिए लिपि का प्रचलन हुआ है | वर्णमाला के अभाव में रज्जु अर्थात ग्रन्थलिपि, रेखालिपि, चित्रलिपि आदि लिपियों के उदाहरण मिलते हैं | रज्जु अथवा ग्रन्थलिपि चीन और उत्तरी अमेरिका में प्रचलित थी | डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा पाणिनी के जिसका समय चौथी सदी ई. पू. है उल्लेखों के आधार पर भारतवर्ष में लिपि का प्रसार चौथी सदी ई. पू. से मानते हैं | पाणिनी ने अपनी अष्टाध्यायी में लिपि का स्पष्ट उल्लेख करते हुए अनेक पूर्व व्याकरणाचार्यों के मतों का उल्लेख किया है | पांडुलिपि या हस्तलेख के सम्बन्ध में लिपि और लेखन उपादान का प्राचीन युग से ही व्यापक महत्त्व रहा है | श्रुत लेखन में लिपि का प्राधान्य है | भारत की प्रधान लिपि ब्राह्मी रही है और इसी से नागरी, शारदा, ठाकरी, गुरुमुखी, नेवारी, बंगला, उड़िया, तेलुगु, तामिल, कन्नड, भुज, कुटील, गुजराती और तिब्बती का क्रमिक विकास हुआ है | उत्तर भारत में देवनागरी लिपि का सर्वाधिक प्रचार हुआ है और स्थापत्य लेखों के लिए पाषाण शिला फलकों का उपयोग किया गया है | कागज का उपयोग तो बहुत बाद में हुआ है | हस्तलेख या पांडुलिपि की अपनी अलग से सत्ता होती है, वह अपने समय और देश के बौद्धिक, साहित्यिक, भाषिक, शैक्षिक, ऐतिहासिक स्थितियों की उपज है | ऐसी स्थिति में हमें उसके पृथक से बने व्यक्तित्व को किसी भी सन्दर्भ में अस्वीकृत मानकर संदिग्ध कर देना समीचीन नहीं है |

पाण्डुलिपि या हस्तलेख में लिपि शब्द है और लिपि भाषा का ही लिखित रूप है, अत: पाठ संपादन में लिपि ही वह केंद्रीय तत्त्व है जो समस्त पाण्डुलिपि विज्ञान का आधार बनता है | भारतीय भाषाओं के व्यापक सन्दर्भ में सब भाषाओं की लिपियाँ अलग-अलग मिलती हैं | अत: प्राचीन साहित्य का लिपिबद्ध स्वरूप समझना और उसे उपलब्ध कराना सरल एवं सहज कार्य नहीं है | पाण्डुलिपि के संपादन में सबसे महत्त्वपूर्ण भाषिक व्यवस्था ही है और उसके उपरान्त ही विषय वस्तु के एतिहासिक परिवेश की समस्या सामने आती है | सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव का अपना व्यापक महत्त्व है, तथ्यों की परम्परा से अनेक तथ्य उजागर हो जाते हैं | लिपि परक विपथनों का जब तक परिग्रहण नहीं होता तब तक सही पाठ का निर्धारण सम्भव नहीं है | पाण्डुलिपि में जो लिपि प्रतीक आये हैं उनका ज्ञान और अभ्यास करते हुए भाषिक व्यवस्था के आधार पर पद, पदबद्ध और उपवाक्य का निर्णय करना पड़ता है | काव्यग्रन्थ कि पाण्डुलिपि में छन्दो का भी महत्त्व होता है तथा मात्राओं और गुणों तक को पंक्तियों के सही निर्धारण में प्रयोग में लाना पड़ता है |

आज भारतीय पाठानुसंधान की जो स्थिति है वह निराशाजनक ही मानी जायेगी क्योंकि इतने बड़े कठिन कार्य में जुड़ने का दुस्सहस कोई नहीं करता बल्कि लोग सरल शोध की ओर जाना अधिक पसंद करते हैं | पाण्डुलिपि साहित्य जितना भारत में उपलब्ध है संसार के किसी भी देश में उपलब्ध नहीं है | उसे सामने लाने की आवश्यकता है |

७.९ सारांश

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि पाठानुसन्धान का कार्य अन्य प्रकार के शोध कार्यों से स्वरुपत: भिन्न होने के कारण शोधकर्ता में भी भिन्न प्रकार की प्रतिभा क्षमताओं की अपेक्षा करता है | यह कार्य स्थायी महत्त्व का है | यह ऐसा अनुसंधान है जो अनेक भावी अनुसंधान के लिए मूल्यवान् शोध समग्री प्रस्तुत करता है | इससे एक तिरोहित होती रचना का उद्धार होता है | तथा लुप्त होता हुआ रचनाकार प्रकाश में आता है | अत: पाठानुसंधान का कार्य ऐतिहासिक महत्त्व रखता है |

७.१० दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) पाठानुसंधान की प्रक्रिया पर प्रकाश डालिए |

२) पाठानुसंधान के विभिन्न चरणों को स्पष्ट कीजिए |

३) पाठानुसंधान के प्रमुख तत्वों को विशद कीजिए |

७.११ लघुत्तरी प्रश्न

१) पाठानुसंधान का मुख्य उद्देश्य क्या है ?

२) पाठानुसंधान के प्रमुख चरण कौन कौन से है ?

३) सम्पादन किसका सहवर्ती कार्य है ?

४) पाण्डुलिपियों में कितने प्रकार के पाठ उपलब्ध होते है ?

५) किस विद्वान का मानना है कि वैज्ञानिक पद्धति थर्मामीटर है ?

६) कौन सा कार्य अत्यन्त उत्तरदायित्व पूर्ण होता है ?

७) कौन कभी कभी किसी रचना या पाठ का उद्धारक बन जाता है ?

८) पाठ साम्य का कार्य क्या है ?

९) पाठ विकृति किसे कहते है ?

१०) किसके निर्धारण में भाषाशास्त्र का ज्ञान भी आवश्यक है ?

११) पाठ निर्धारण का कार्य किस पर आश्रित है ?

७.१२ संदर्भ ग्रन्थ

१) अनुसंधान प्रविधि - डॉ. विनय मोहन शर्मा, नेशनल पेपरबैक्स, नई दिल्ली

२) शोध प्रविधि - डॉ. हरिश्चंद्र वर्मा, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, पंचकूल हरियाना

३) हिन्दी अनुसंधान - डॉ. विजयपाल सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

४) अनुसंधान स्वरूप और आयाम - डॉ. उमाकान्त गुप्त, डॉ. ब्रजरतन जोशी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

५) शोध प्रविधि और प्रक्रिया - डॉ. हरीश अरोडा, के. के. पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

✞✞✞✞

८

शोध प्रबंध की रूपरेखा

इकाई की रूपरेखा:

८.१ इकाई का उद्देश्य

८.२ प्रस्तावना

८.३ शीर्ष पृष्ठ

८.४ प्रस्तावना

८.५ अध्याय विभाजन

८.६ पाद टिप्पणी

८.७ संदर्भ ग्रंथ सूची

८.८ परिशिष्ट

८.९ सारांश

८.१० लघुत्तरी प्रश्न

८.११ दीर्घोत्तरी प्रश्न

८.१२ संदर्भ ग्रंथ

८.१ इकाई का उद्देश्य

यह इकाई शोध प्रबंध की रूपरेखा पर केंद्रित है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

१) शोध-प्रबंध की रूपरेखा से परिचित होंगे।
२) शोध-प्रबंध के भागों की जानकारी दे सकेंगे।
३) संदर्भ लेखन की शैलियों को समझकर शोध-प्रबंध में संदर्भों का उल्लेख कर सकेंगे।
४) शोध-प्रबंध द्वारा शोध-प्रतिवेदन प्रस्तुत कर सकेंगे।
५) शोध-प्रबंध की रूपरेखा और महत्व को अभिव्यक्त कर पाएंगे।

८.२ प्रस्तावना

शोध-प्रबंध शोध का लिखित रूप होता है। अंग्रेजी में इसके लिए थीसिस (Thesis) शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह डेजर्टेशन या लघु शोध प्रबंध तथा प्रकल्प की तुलना में विस्तृत एवं व्यापक होता है। यह विश्वविद्यालय की विद्या वाचस्पति हेतु विशेष रूप से प्रस्तुत किया जाता है। इसमें विशाल अध्ययन के परिणामों को प्रस्तुत किया जाता है। शोधार्थी के शोध का मूल्यांकन शोध-प्रबंध के आधार पर ही किया जाता है। शोध के समग्र अध्ययन और निष्कर्षों को लिखित रूप में शोध-प्रबंध के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। यह अनुसंधान या शोध का लिखित प्रतिवेदन होता है। शोधार्थी द्वारा योजना के अनुसार अनुसंधान पूर्ण

करने के बाद जो परिणाम और निष्कर्ष प्राप्त होते हैं उन्हें शोध प्रतिवेदन में दिया जाता है। यह शोध प्रतिवेदन मौलिक एवं विस्तृत होता है। एस. एन. गणेशन के अनुसार "जब अनुसंधान के परिणामों को लिखित रूप में प्रस्तुत किया जाता है तब उसे शोध-प्रतिवेदन (रिसर्च रिपोर्ट) कहा जाता है।"1 परिणामों और निष्कर्षों के साथ ही शोध प्रबंध में शोध से संबंधित तथ्य और उसका उपयुक्त विश्लेषण और विवेचन भी होता है। शोध प्रविधि और प्रक्रिया के अनुसार परिणामों तक पहुंचने की पूरी प्रक्रिया का लिखित सिलसिलेवार ब्यौरा शोध प्रबंध में दिया जाता है। जब व्यापक विषयों पर विवरणात्मक प्रबंध के रूप में प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाता है तब उसे शोध-प्रबंध कहा जाता है। जब हम शोध-प्रबंध की संकल्पना को परिभाषित करने का प्रयास करते हैं तब यह स्पष्ट होता है कि शोधार्थी द्वारा व्यापक विषय पर अनुसंधान पूर्ण करने के पश्चात प्रस्तुत किया गया विस्तृत प्रबंध रूपी लिखित या टंकित शोध-प्रतिवेदन शोध-प्रबंध (थीसिस) है। यह ऐसा दस्तावेज होता है जो शोधार्थी के शोध को विधिवत प्रस्तुत करता है। इसे अकादमिक उपाधि प्राप्त करने की आवश्यकता के रूप में लिखा जाता है। इसका रूप मानक और रूपरेखा निश्चित होती है। उसके प्रत्येक भाग या अंग के कुछ सामान्य स्वीकृत नियम होते हैं। जिस विश्वविद्यालय या संस्था में मूल्यांकन हेतु शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया जाता है उसके भी कुछ विशिष्ट नियम हो सकते हैं। शोधार्थी को इन सारी बातों पर विचार करके शोध-प्रबंध की रूपरेखा के औपचारिक-अनौपचारिक पहलुओं को समझकर शोध-प्रबंध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करना चाहिए। विद्वानों ने शोध-प्रबंध की रूपरेखा को मुख्यतः पूर्व भाग, मुख्य भाग और पश्च भाग इन तीन भागों में विभाजित करते हुए उसके स्वरूप को स्पष्ट किया है। अतः शोध-प्रबंध की रूपरेखा को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है।

८.३ शीर्ष पृष्ठ (FRONT PAGE)

शोध-प्रबंध का पहला पृष्ठ शीर्ष पृष्ठ होता है। इसके लिए शीर्षक पृष्ठ, मुख पृष्ठ या अंग्रेजी में फ्रंट पेज, टाईटल पेज आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। अब यह मुद्रित ही होता है। इस पृष्ठ से शोध-प्रबंध का परिचय मिलता है। यह आवरण पृष्ठ के बाद होता है। इस पर सबसे पहले शोध विषय का उल्लेख दिया जाता है। विषय का उल्लेख केंद्र संरेखण प्रणाली से दिया जाता है। विषय उल्लेख के लिए उद्धरण चिह्न का भी प्रयोग किया जाता है और अक्षरों का आकार भी अन्य विवरण की तुलना में बड़ा होता है। यह विषय शोध-प्रबंध का शीर्षक भी होता है। जिस शीर्षक से शोध के लिए अनुमति मिली है, पंजीकरण हुआ है वही शीर्षक विषय के रूप में उल्लेखित करना अनिवार्य होता है। उसमें परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं होती है। यदि कोई शोधार्थी उसमें परिवर्तन करता है तो उसके सामने कई कठिनाईयां निर्माण हो सकती हैं। उसके शोध-प्रबंध को संबंधित विश्वविद्यालय अस्वीकार भी कर सकता है। इसलिए शोध विषय का जो शीर्षक पंजीकृत है वही शीर्ष पृष्ठ पर देना आवश्यक होता है।

विषय के पश्चात जिस विश्वविद्यालय और उपाधि (पी-एच.डी.अथवा डी.लिट.) के लिए शोध प्रबंध प्रस्तुत किया जा रहा है उसका विवरण दिया जाता है। यह विवरण विषय के ठीक नीचे कोष्ठक में सामान्य आकार में दिया जाता है। इस विवरण के बाद शोध से जुड़े नवाचार और बदलते संदर्भों और शोध शर्तों के अनुसार “शोध-दृष्टि से सत्यांश के उद्घाटन का प्रयास”2 (शोध स्वरूप एवं मानक व्यावहारिक कार्यविधि -बैजनाथ सिंहल, पृ. 137) ऐसा विवरण देना आज की आवश्यकता है। इसके बाद शोधार्थी का नाम और नाम के नीचे शैक्षिक

योग्यता का उल्लेख दिया जाता है। शोधार्थी के बाद शोध निर्देशक का नाम, शैक्षिक योग्यता और पद का उल्लेख किया जाता है। शोध निर्देशक के नाम के नीचे और शीर्ष पृष्ठ के अंत में संबंधित विश्वविद्यालय का नाम और शोध प्रबंध प्रस्तुति की तिथि या महिना और वर्ष दिया जाता है। यह सारा विवरण अब कंप्यूटर की सहायता से क्रमबद्ध और योजना के अनुसार बनाकर मुद्रित किया जाता है। शीर्ष पृष्ठ का समग्र विवरण यथावत आवरण पर या जिल्द पर बाहर या तो विश्वविद्यालय के नियमों के अनुसार सुनहरे उभरे हुए अक्षरों (एंबॉसिंग) द्वारा छापा जात है या कुछ विश्वविद्यालय शीर्ष पृष्ठ केवल रंगीन बनाकर आवरण के रूप में जोड़ने का सुझाव भी देते हैं। शीर्ष पृष्ठ के बाद शोध-प्रबंध की मौलिकता के संदर्भ में शोध आशय समानता (कंटेंट सिमिलैरिटी डिटेक्शन) का प्रतिशत बतानेवाला प्रमाणपत्र, शोध निर्देशक का प्रमाणपत्र और शोधार्थी का प्रतिज्ञा पत्र दिया जाता है।

८.४ प्रस्तावना (INTRODUCTION)

प्रस्तावना के लिए प्राक्कथन, भूमिका आदि पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया जाता है। अंग्रेजी में इसके लिए प्रायः इंट्रोडक्शन शब्द प्रयुक्त किया जाता है। प्रस्तावना शोध-प्रबंध का आरंभिक कथन या वक्तव्य होता है जो शोध विषय के विस्तारपूर्वक विवरण से पहले दिया जाता है। शोध-प्रब में इसका महत्वपूर्ण स्थान होता है। यह पाठकों के प्रति शोधार्थी का प्रत्यक्ष कथन होता है। इससे शोध-विषय का संक्षिप्त परिचय मिलता है। प्रस्तावना या भूमिका "शोधगत स्थापना की सूचक होती है।"(शोध स्वरूप एवं मानक व्यावहारिक कार्यविधि -बैजनाथ सिंहल, पृ. 139) जिन उद्देश्यों को आधार बनाकर शोध किया गया है उन्हें भी प्रस्तावना में दिया जाता है। शोध विषय से संबंधित पूर्ववर्ती शोध की विवेचना, शोध के कारण और शोध की वर्तमान स्थिति तथा भविष्यगत संभावनाओं का लेखा-जोखा इसमें दिया जाता है। शोध की पद्धतियों और प्राकल्पनाओं का संक्षिप्त विवरण भी इसमें शामिल होता है। शोध के विभिन्न अध्यायों का परिचय देते हुए अध्ययन की मौलिकता और तथ्यात्मक स्थापनाओं तथा निष्कर्षों का संक्षिप्त विवरण इसमें दिया जाता है। शोधार्थी शोध विषय में दिए गए अपने योगदान की ओर भी इसमें ध्यानाकर्षित करता है। साथ ही शोध की सीमाओं को भी इसमें व्यक किया जाता है। यह शोध-प्रबंध की वास्तविक छवि को प्रस्तुत करती है और प्रबंध को पढ़ने समझने की जिज्ञासा भी विकसित करती है। अन्य पुरुष की शैली में दिए गए विद्वानों के कथन इसे और अधिक तथ्यात्मक बना देते हैं। प्रस्तावना के अंतिम भाग में शोध को पूर्ण करने के लिए प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप में सहायता करनेवाले लेखकों, विद्वानों तथा शोध निर्देशक आदि के प्रति आभार की औपचारिकता प्रकट की जाती है। इसे बड़ी सावधानी और गंभीरतापूर्वक लिखा जाता है। अतः प्रस्तावना या भूमिका जितनी सारगर्भित और सधी हुई होती है शोध-प्रबंध उतना ही अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है।

८.५ अध्याय विभाजन (शीर्षक, उप-शीर्षक)

शोध का एक निश्चित बृहद लक्ष्य होता है। वह शोध शीर्षक द्वारा स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। शोधार्थी उस लक्ष्य को छोटे-छोटे उद्देश्यों द्वारा प्राप्त करता है। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए शोध विषय का अध्याय विभाजन शीर्षक तथा उप शीर्षकों में किया जाता है। इस

विभाजन का क्रमांकन भी किया जाता है। अध्यायों द्वारा शोधार्थी गहन अध्ययन करके बृहद लक्ष्य तक पहुंचता है। साथ ही शोध को समझने की दृष्टि से भी अध्याय विभाजन महत्वपूर्ण होता है। इसलिए संपूर्ण शोध विषय को अध्यायों में विभाजित किया जाता है। इस विभाजन के कारण प्रत्येक अध्याय का स्वरूप, संभवानाएं और सीमाएं स्पष्ट हो जाती हैं। शोध विषय के अध्यायों में शोध का विस्तृत अध्ययन और विवरण होता है। शोध प्रविधियों के आधार पर विश्लेषणात्मक, तर्कपूर्ण और विवेचनात्मक अध्ययन उद्देश्यों के अनुरूप अध्यायों में किया जाता है। इसलिए इनका समावेश शोध प्रबंध के मुख्य भाग में होता है।

शोध विषय के गहन, गंभीर, क्रमबद्ध और प्रभावशाली निरूपण के लिए शोध विषय का अध्यायों और उप-अध्यायों में विभाजन किया जाता है। उप-अध्याय भी खंडों-उप खंडों में विभाजित करके सभी का संख्यांकन वैज्ञानिक आधार पर होता है। सामान्यतः शोध विषय को पांच से अधिक अध्यायों में विभाजित किया जाता है। शोध विषय के अध्याय विभाजन में आरंभिक या प्रथम अध्याय विषय की भूमिका और पृष्ठभूमि और संभावनाओं से संबंधित होता है। दूसरे अध्याय में शोध विषय के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का अध्ययन किया जाता है। तीसरे अध्याय में अध्ययन की सैद्धांतिकी या शोध आधार स्पष्ट किया जाता है। चौथे अध्याय में विषय का अध्ययन और विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है। पांचवें अध्याय में अध्ययन की उपयुक्तता और प्रासंगिकता का विवेचन अपेक्षित होता है। इसके बाद जो अध्याय होते हैं वे साहित्यिक शोध में शिल्पा से संबंधित या भाषिक प्रयोग को आधार बनाकर दिए जाते हैं। प्रत्येक अध्याय के अंत में उस अध्याय के निष्कर्ष भी दिए जाते हैं। अध्यायों के क्रमवार सिलसिले के बाद शोध-विषय के निष्कर्षों को और शोधगत संभावनाओं को उपसंहार एवं निष्कर्ष के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। शोध विषय के लक्ष्य और उद्देश्यों के अनुसार शोध के अध्याय निश्चित किए जाते हैं। शोध प्रविधि और विषय की अपेक्षा के अनुसार अध्यायों की संख्या कम या ज्यादा हो सकती है।

शोध विषय के सुव्यवस्थित अध्ययन के लिए अध्याय विभाजन के बाद अध्यायों को उप अध्यायों में विभाजित किया जाता है। अध्याय के उद्देश्य को उप अध्यायों द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। उप अध्याय विभाजन के मुख्यतः दो प्रकार माने जाते हैं। पहला प्रकार एक स्तरीय विभाजन और दूसरा बहुस्तरीय विभाजन। एक स्तरीय विभाजन में अध्याय के अलग-अलग दस-बारह खण्ड बनाएं जाते हैं और प्रत्येक खण्ड में संदर्भित विषय का अध्ययन किया जाता है और निष्कर्ष निकाले जाते हैं। बहुस्तरीय विभाजन में अध्याय को पहले खण्डों में विभाजित किया जाता है और उसके बाद खण्डों को उप खण्डों में विभाजित किया जाता है। आवश्यकता के अनुसार उप खण्डों को भी भागों-विभागों में विभाजित किया जाता है। दोनों विभाजन में संख्यांकन विभाजन के अनुसार किया जाता है। अध्याय विभाजन की दोनों पद्धतियों में दूसरी पद्धति वैज्ञानिक और सुव्यवस्थित होने के कारण आज अध्याय विभाजन की बहुस्तरीय विभाजन पद्धति अधिक प्रचलित है। बहुस्तरीय विभाजन पद्धति के साथ ही क्रमांकन की दशमलव क्रमांकन पद्धति अत्यंत उपयोगी साबित हो रही है।

८.६ पाद टिप्पणी

शोध को वस्तुनिष्ठ, तार्किक, मौलिक, वैज्ञानिक, सुव्यवस्थित और प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करने के लिए शोधार्थी की स्थापनाओं के साथ ही साथ उद्धरणों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। उद्धरण ही शोध के निष्कर्षों को आधार प्रदान करते हैं। यह भी कहा जाता है कि “शोधार्थी की स्थापनाएं उद्धरण के आलोक में ही चमकती है।” (शोध स्वरूप एवं मानक व्यावहारिक कार्यविधि - बैजनाथ सिंहल, पृ.108) उद्धरण शोध की आवश्यकता और अनिवार्यता भी हैं। आवश्यक और औचित्यपूर्ण उद्धरण शोध की गरिमा और विश्वसनीयता में वृद्धि करते हैं। उद्धरणों का प्रयोग शोधार्थी के मत या विचार की पुष्टि के लिए, दूसरों के मतों के खंडन के लिए तथा अन्य स्थापनाओं की स्वीकृति के लिए किया जाता है। शोधार्थी अपनी बात सशक्त रूप में उद्धरणों के आधार पर स्पष्ट कर सकता है। शोध में हमेशा प्रासंगिक, उपयोगी और महत्वपूर्ण उद्धरणों का प्रयोग किया जाता है। साथ ही उद्धरण शोध की वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार उद्धरण चिह्न में दिए जाते हैं। जो उद्धरण प्रबंध में दिए हैं उनके स्त्रोतों का विवरण अनिवार्य रूप से शोधर्न-प्रबंध के प्रत्येक अध्याय में दिया जाता हैं। प्रत्येक उद्धरण को विशिष्ट क्रम देकर उसी क्रम में उसके स्त्रोतों का उल्लेख संदर्भों में दिया जाता है।

शोध में प्रयुक्त उद्धरणों के साथ-साथ कुछ संकल्पनाएं, सूचनाएं, अनुवाद, पारिभाषिक शब्द, दूसरी भाषाओं के शब्द एवं अवधारणाएं भी दी जाती है। शोधार्थी शोध की विश्वसनीयता और प्रामाणिकता के लिए इन्हें विशेष रूप से सांझा करना चाहता है। लेकिन शोध की अपनी सीमाओं के करण शोधार्थी मुख्य आशय में इसे विस्तार से नहीं दे पाता। पर इसे टिप्पणियों के रूप में प्रबंध में प्रस्तुत किया जाता है।

शोध को पूर्ण करने के लिए जिन उद्धरणों और महत्वपूर्ण सूचनाओं और संकल्पनाओं का प्रयोग किया है उनके क्रमवार स्त्रोतों और उनके विवरण को शोध-प्रबंध के प्रत्येक अध्याय के संदर्भों में दिया जाता है।

संदर्भों (References) को उल्लेख की दो पद्धतियां प्रचलित हैं। एक पाद टिप्पणी (फुटनोट) और दूसरी अंतिम या समाप्ति टिप्पणी (एंडनोट)। पाद टिप्पणी वह टिप्पणी होती है जो पृष्ठ के अंत में दाईं ओर दी जाती है। सामान्य शब्दों में कहें तो पन्ने के निचले हिस्से में दी जानेवाली टिप्पणी या टीका पाद टिप्पणी है। जो टिप्पणी किसी शोध-प्रबंध अथवा ग्रंथ में प्रत्येक पृष्ठ के निचले भाग में दाईं ओर संदर्भ संकेत, सूचना, निर्देश आदि देने के लिए प्रयुक्त की जाती है उसे पाद टिप्पणी कहा जाता है। बैजनाथ सिंहल के शब्दों में कहें तो “शोध-प्रबंध के प्रत्येक पृष्ठ के पाद भाग में उस पृष्ठ पर प्रयुक्त उद्धरणों के स्त्रोत-ग्रंथों के पूर्ण विवरण का प्रस्तुतीकरण है।” (पृ. 108) इसके लिए तल-टीप शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। इसके द्वारा उद्धरणों के स्त्रोत संदर्भ संकेत के रूप में दिए जाते हैं। साथ ही किसी विशिष्ट विषय, तथ्य और संकल्पना के बारे अधिक विवरण, व्याख्या, अनुवाद, सूचना तथा जानकारी दी जाती है जिसका उल्लेख प्रबंध के कलेवर में असंभव होता है। प्रबंध के प्रत्येक पृष्ठ पर दिए गए उद्धरणों तथा संकल्पनाओं और सूचनाओं को क्रमवार क्रमांकन देते हुए उस क्रम संख्या को सामान्य से उपर उठाकर वहीं पर दिया जाता है और उसी पृष्ठ के निचले भाग में दाईं ओर उसी क्रम में क्रम संख्या देते हुए टिप्पणी को प्रस्तुत किया जाता है।

प्रत्येक पृष्ठ पर स्वतंत्र क्रम संख्या भी दी जा सकती है तथा संपूर्ण अध्याय में प्रयुक्त टिप्पणियों को क्रमवार या लगातार क्रम संख्या भी दी जा सकती है। समाप्ति टिप्पणी (एंडनोट) वह टिप्पणी होती है जो शोध-प्रबंध या ग्रंथ के प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर दी जाती है। टिप्पणी प्रत्येक पृष्ठ पर न देते हुए वह अध्याय के अंत में या समाप्ति पर दी जाती है। अध्याय के अंत में पूर्ण अध्याय में प्रयुक्त उद्धरणों, सूचनाओं और संकल्पनाओं की टिप्पणियों को क्रमवार एक साथ दिया जाता है। संदर्भों की इन दो पद्धतियों में आज पाद-टिप्पणी अधिक प्रचलित है। शोध प्रबंध के पाठकों की स्त्रोत संबंधित जिज्ञासाओं का समाधान उसी पृष्ठ पर होने के कारण यह लोकप्रिय हुई है। शोध-प्रबंध में इसका प्रयोग तर्कपूर्ण लगता है। अब शोध-प्रबंध और शोध-आलेख की दृष्टि से यह पद्धति वरेण्य बन गई है।

टिप्पणियां उद्धरणों और सूचनाओं की प्रामाणिकता को सिद्ध करती हैं। इनसे शोधार्थी की मान्यताओं तथा स्थापनाओं को विश्वसनीयता का संबल मिलता है। ये संदर्भ ग्रंथ सूची से अलग और स्वतंत्र होती हैं। टिप्पणी में उद्धरणों और सूचनाओं का स्त्रोत देते हुए पृष्ठ संख्या दी जाती है। इससे शोध-प्रबंध के पाठक को एक ओर स्त्रोत की जानकारी मिलती है तो दूसरी ओर टिप्पणी में दिए गए ग्रंथों, सूचनाओं, मूल स्थापनाओं आदि को पढ़ने की जिज्ञासा भी उत्पन्न होती है। टिप्पणियों को क्रम संख्या देते समय भारतीय अंकों के अंतरराष्ट्रीय रूप का प्रयोग आज अधिक वैज्ञानिक और उपयुक्त प्रतीत होता है।

पाद टिप्पणी में संदर्भ देने की अनेक पद्धतियां अथवा शैलियां उपलब्ध हैं। हार्वर्ड संदर्भ शैली, ए. पी. ए. (अमेरिकन साइकोलॉजिकल एसोसिएशन) संदर्भ शैली, एम. एल. ए. संदर्भ शैली, शिकागो संदर्भ, एम. एच. आर. ए. (मॉडर्न ह्यूमॅनिटिज रिसर्च असोसिएशन) संदर्भ शैली, ओस्कोला संदर्भ शैली, वैंकूवर संदर्भ आदि शैलियां आज प्रचलित हैं। इनमें साहित्यिक, कला तथा मानविकी शोध की दृष्टि से एम.एल.ए. (मॉडर्न लैंग्वेज एसोसिएशन) संदर्भ शैली अधिक उपयुक्त है। इसी शैली का उपयोग पाद-टिप्पणी और संदर्भ ग्रंथ सूची के लिए करना चाहिए। इस शैली के आधार पर पाद-टिप्पणी में स्त्रोत ग्रंथ का उल्लेख करते समय लेखक का प्रथम नाम पहले दिया जाता है और उसके बाद उपनाम। उपनाम के बाद अल्पविराम देकर ग्रंथ का शीर्षक इटालिक करके दिया जाता है। ग्रंथ शीर्षक के बाद कोष्ठक में प्रकाशन स्थान और प्रकाशन का नाम देकर उसका संस्करण दिया जाता है। स्त्रोत ग्रंथ के उल्लेख में शोधार्थी द्वारा उद्धरण जिस ग्रंथ से लिया है उसकी पृष्ठ संख्या भी देना आवश्यक होता है। एम.एल.ए.शैली के अद्यतन नौवें संस्करण के अनुसार अधोलिखित रूप में पाद-टिप्पणी में स्त्रोत ग्रंथोल्लेख किया जाता है।

1. एक लेखकीय ग्रंथ –

रामविलास शर्मा, *भाषा और समाज* (नई दिल्ली: राजकमल पेपरबैक्स, 2023) पृ. 176

2. दो लेखकीय ग्रंथ –

कन्हैयालाल चंचरीक और (डॉ.) धीरसिंह, *भारतीय दलित आंदोलन की रूपरेखा* (नई दिल्ली: यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 2007) पृ. 84

3. तीन अथवा अधिक लेखकीय ग्रंथ –
(डॉ.) नगेंद्र तथा अन्य, *हिंदी साहित्य का इतिहास* (नौएडा: मयूर पेपरबैक्स, 2009) पृ. 399

4. संपादित ग्रंथ (उद्धरण का लेखक जब संपादक स्वयं होता है तब)–
रमणिका गुप्ता (संपा.), *आदिवासी साहित्य यात्रा* (नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन प्रायवेट लिमिटेड, 2012) पृ. 14

5. संपादित ग्रंथ का अध्याय (संपादकेतर लेखक) –
दामोदर मोरे, "मराठी कविता में आदिवासी चेतना",*आदिवासी साहित्य यात्रा* (संपा.) रमणिका गुप्ता (नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन प्रायवेट लिमिटेड, 2012) पृ. 76

6. अनूदित ग्रंथ (अनुवादक का उद्धरण) -
जे.एल.रेड्डी(अनु.), *भू-देवता*, (नई दिल्ली: राजकमल पेपरबैक्स, 2019) भूमिका पृ. 8

7. अनूदित ग्रंथ का मूल पाठ (अनूदित ग्रंथ के मूल पाठ से उद्धरण)–
केशव रेड्डी, *भू-देवता*, जे.एल.रेड्डी (अनु.), (नई दिल्ली: राजकमल पेपरबैक्स, 2019), पृ. 41

8. ई-पुस्तक-
प्रेमचंद, *गोदान* (नई दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्स, 2007), पृ. 74,
उपलब्ध, https://www.pustak.org/index.php/books/bookdetails/1442/Godan

9. पत्रिका लेख/शोध आलेख –
जीवन सिंह ठाकुर, "गोदान के पहले",*शिवना साहित्यिकी*, अंक 08, (जनवरी-मार्च 2018),पृ.13

10. समाचार पत्र का आलेख/समाचार –
(डॉ.) करुणाशंकर उपाध्याय, "हिंदी का वैश्विक परिदृश्य", नवभारत टाईम्स, मुंबई (10 जनवरी, 2022), पृ. 06

11. वेबपेज/ वेबसाइट/ ब्लॉग–
(डॉ.) सचिन गपाट, "कालजयी साहित्यकार – प्रेमचंद", 10 मई 2024
उपलब्ध, https://drsachingapat.blogspot.com/2017/07/blog-post.html

12. सिनेमा –
तारे जमीन पर, निदेशक, अमीर खान, 2008

उपर्युक्त शैली द्वारा पाद–टिप्पणी में स्त्रोतोल्लेख देना चाहिए। जब कोई ग्रंथ टिप्पणी वाले पृष्ठ पर पहली बार दें रहे हैं तो उसका पूर्ण विवरण देना आवश्यक है। यदि उसी ग्रंथ से

लगातार उद्धरण लेकर उसका उल्लेख उसी पृष्ठ पर दे रहे हैं तो 'वही' (अंग्रेजी में 'Ibid') लिखकर उद्धरण की पृष्ठ संख्या दी जाती है। पुनः उसी पृष्ठ पर ग्रंथ का पूर्ण विवरण लगातार देने की आवश्यकता नहीं है। सुविधा की दृष्टि से 'वही' का प्रयोग अच्छा है। लेकिन शोध की अधुनातन कार्यविधि के अनुसार 'वही' के प्रयोग के स्थान पर टिप्पणियों में पहली बार स्त्रोत ग्रंथ का पूर्ण उल्लेख देकर दूसरी बार लगातार उसी ग्रंथ के उद्धरण का स्त्रोत उल्लेख केवल ग्रंथ का नाम तथा पृष्ठ संख्या देकर करना चाहिए। यदि एक ही ग्रंथ के उद्धरण लगातार नहीं दिए जा रहे हैं तब स्त्रोत का पूर्ण विवरण देना आवश्यक होता है। पाद-टिप्पणी में जब नया पृष्ठ आता है तब पहले स्त्रोत ग्रंथ का पूर्ण विवरण और लगातार स्त्रोत उल्लेख आने पर उल्लेखित विवरण देना तर्कपूर्ण होता है। स्त्रोतों और संदर्भों के उल्लेख से साहित्यिक चोरी से भी बचा जा सकता है।

८.७ संदर्भ ग्रंथ सूची

संदर्भ ग्रंथ सूची शोध का आधार होती है। यह शोध की विश्वसनीयता को अभिव्यक्त करती है। संदर्भ ग्रंथ सूची से शोध की समृद्धि और संभावनाओं का बोध होता है। संदर्भ ग्रंथ सूची के लिए अंग्रेजी में 'बिब्लियोग्रैफी' शब्द प्रचलित है। यह 'बिब्लियो' और 'ग्राफ' इन शब्दों के योग से बना है। इसका व्युत्पत्तिगत अर्थ है पुस्तकों के बारे में लिखना। यह अत्यंत व्यापक संकल्पना है। इसके लिए ग्रंथ सूची, संदर्भिका, ग्रंथ वृत्त आदि शब्द हिंदी में प्रयुक्त होते हैं। शोध प्रबंध के अंतिम भाग में दिए गए स्त्रोतों, ग्रंथों, पत्र-पत्रिकाओं और वेब पटल के विस्तारपूर्वक और व्यवस्थित विवरण को संदर्भ ग्रंथ सूची कहा जाता है। शोध को पूर्ण करने के लिए जिन स्त्रोतों और ग्रंथों का उपयोग शोधार्थी द्वारा किया जाता है उसका विस्तृत विवरण संदर्भ ग्रंथ में होता है। शोध को पूर्ण करने के लिए तथा निष्कर्षों तक पहुंचने के लिए शोधार्थी विभिन्न संदर्भों को उद्धृत करता है। इनका विवरण वह टिप्पणियों में देता भी है। लेकिन संदर्भों का सारा विवरण संदर्भ ग्रंथ सूची में एक साथ अकारादि क्रम से व्यवस्थित करके दिया जाता है। टिप्पणियों में जहां जो संदर्भ उद्धृत किया है उसका ही विवरण पृष्ठ संख्या के साथ दिया जाता है। संदर्भ ग्रंथ सूची में पृष्ठ संख्या नहीं दी जाती है और सहायक ग्रंथों का भी विवरण एक साथ दिया जाता है। टिप्पणियों में संदर्भों के उल्लेख के लिए जिस शैली को अपनाया गया है उसी शैली में संदर्भ ग्रंथ सूची का विवरण देना चाहिए। संदर्भ ग्रंथ सूची में विवरण देने की एम.एल.ए. (मॉडर्न लैंग्वेज एसोसिएशन) संदर्भ शैली साहित्यिक शोध के अनुरूप है इसलिए संदर्भ ग्रंथ सूची लेखन के लिए इसका प्रयोग वरण्य है। शोधार्थी द्वारा संदर्भ कार्ड के माध्यम से जो उद्धरण और उसके स्त्रोत संकलित किए हैं उन सबका विवरण संदर्भ ग्रंथ सूची में देना आवश्यक है। साथ ही शोधार्थी ऐसे स्त्रोतों और ग्रंथों का भी उल्लेख संदर्भ ग्रंथ सूची में कर सकता है जिनसे उद्धरण नहीं लिए हैं लेकिन शोध विषय को समझने और विश्लेषित करने में उन्होंने सहायता की है। संदर्भ ग्रंथ सूची में पहले आधार ग्रंथ सूची देनी चाहिए। आधार ग्रंथ सूची के बाद संदर्भ तथा सहायक ग्रंथ सूची एवं कोश ग्रंथ सूची। इनके बाद पत्र-पत्रिकाएं, समाचार पत्र, पैंपलेट, मोनोग्राप्स, रिपोर्ताज और संस्मरण, पत्र और सरकारी दस्तावेज तथा वेबपटलों का विवरण देना चाहिए। यह विवरण टिप्पणियों के विवरण से थोड़ा भिन्न होता है। इसमें लेखक का नामोल्लेख उप/कुल या सरनेम से आरंभ होता है और पृष्ठ संख्या का उल्लेख भी नहीं दिया जाता है। अन्य विवरण टिप्पणियों के अनुरूप लेकिन अकारादि क्रम से व्यवस्थित करके दिया जाता है।

८.८ परिशिष्ट

परिशिष्ट शोध प्रबंध का अंतिम भाग है। अंग्रेजी में परिशिष्ट के लिए'अपेंडिक्स' शब्द प्रयुक्त किया जाता है। परिशिष्ट का शाब्दिक अर्थ है छूटा हुआ, बाकी बचा हुआ तथा अवशिष्ट। शोध प्रबंध के अंतिम भाग में संदर्भ ग्रंथ सूची के बाद शोध से संबंधित जो छूटी हुई जानकारी, तथ्य, संकल्पना, साक्षात्कार, पत्र तथा तस्वीरें आदि को देना परिशिष्ट कहलाता है। यह शोध प्रबंध का अनिवार्य अंग नहीं है। लेकिन शोध की अपनी सीमाएं होती हैं। शोधार्थी को इन सीमाओं में रहकर ही शोध प्रतिवेदन प्रस्तुत करना पड़ता है। इसलिए वह शोध से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारी, साक्षात्कार, व्याख्याएं, तस्वीरें अथवा अन्य बातें चाहकर भी की बार प्रतिवेदन में नहीं दे पाता। ऐसे में शोध से संबंधित उन महत्वपूर्ण जानकारियों, तथ्यों, साक्षात्कार, तस्वीरें आदि को परिशिष्ट में दिया जाता है। परिशिष्ट द्वारा शोध से संबंधित छूटे हुए भाग को पाठकों तक पहुंचया जाता है। इससे शोध विषय का एक ओर विस्तार होता है तो दूसरी ओर पाठकों की जिज्ञासाओं का समाधान। यह शोध से संबंधित पूरक और अतिरिक्त जानकारी सांझा करता है इसलिए शोध प्रबंध का परिशिष्ट वाला भाग अनिवार्य न होते हुए भी महत्वपूर्ण होता है।

८.९ सारांश

शोध-प्रबंध अनुसंधान या शोध का लिखित प्रतिवेदन होता है। शोध के समग्र अध्ययन और निष्कर्षों को लिखित रूप में शोध-प्रबंध के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। शोधार्थी द्वारा योजना के अनुसार अनुसंधान पूर्ण करने के बाद जो परिणाम और निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं उन्हें शोध प्रतिवेदन में दिया जाता है। शोध प्रतिवेदन मौलिक एवं विस्तृत होता है। यह लिखित या टंकित शोध-प्रतिवेदन शोध-प्रबंध (थीसिस) कहलाता है। शोध-प्रबंध की रूपरेखा को मुख्यतः पूर्व भाग, मुख्य भाग और पश्च भाग इन तीन भागों में विभाजित करते हुए उसके स्वरूप को स्पष्ट किया जाता है। शोध-प्रबंध की रूपरेखा के शीर्ष पृष्ठ, प्रस्तावना, अध्याय विभाजन, पाद-टिप्पणी, संदर्भ ग्रंथ सूची और परिशिष्ट ये महत्वपूर्ण आयाम हैं। इनके विधिवत प्रयोग से ही शोध-प्रबंध को वैज्ञानिक, सुव्यवस्थित और मानक रूप प्राप्त होता है। इसलिए शोध-प्रबंध को प्रस्तुत करने से पहले उसकी रूपरेखा को समझकर उपर्युक्त उल्लेखित नियमों और दिशानिर्देशों का अनुसरण कर शोध-प्रबंध को मूर्त रूप देकर मूल्यांकन हेतु शोध-प्रबंध प्रस्तुत करना चाहिए। ऐसा करने से ही शोध-प्रबंध मूल्यांकन हेतु सार्थक साबित होगा और शोध तथा शोधार्थी का उद्देश्य भी फलीभूत होगा।

८.१० लघुत्तरी प्रश्न

१) शोध-प्रबंध किसे कहा जाता है?

२) शोध-प्रतिवेदन से क्या तात्पर्य है?

३) संदर्भ उल्लेख की कौनसी पद्धति वरेण्य है?

४) पाद टिप्पणी किसे कहा जाता है?

५) परिशिष्ट के लिए अंग्रेजी में कौनसा शब्द प्रचलित है?

८.११ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) शोध-प्रबंध की रूपरेखा को स्पष्ट कीजिए।
२) पाद टिप्पणी को विस्तार से विशद कीजिए।
३) स्त्रोत ग्रंथोल्लेख की पद्धतियों को समझाइए।
४) संदर्भ ग्रंथ सूची को सोदाहरण समझाइए।

८.१२ संदर्भ ग्रंथ

१) सिंहल बैजनाथ, *शोध स्वरूप एवं मानक व्यावहारिक कार्यविधि* (नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2016)

२) (डॉ.) सहगल मनमोहन, *हिंदी शोध तंत्र की रूपरेखा* (जयपुर: पंचशील प्रकाशन, 2008)

✞✞✞✞